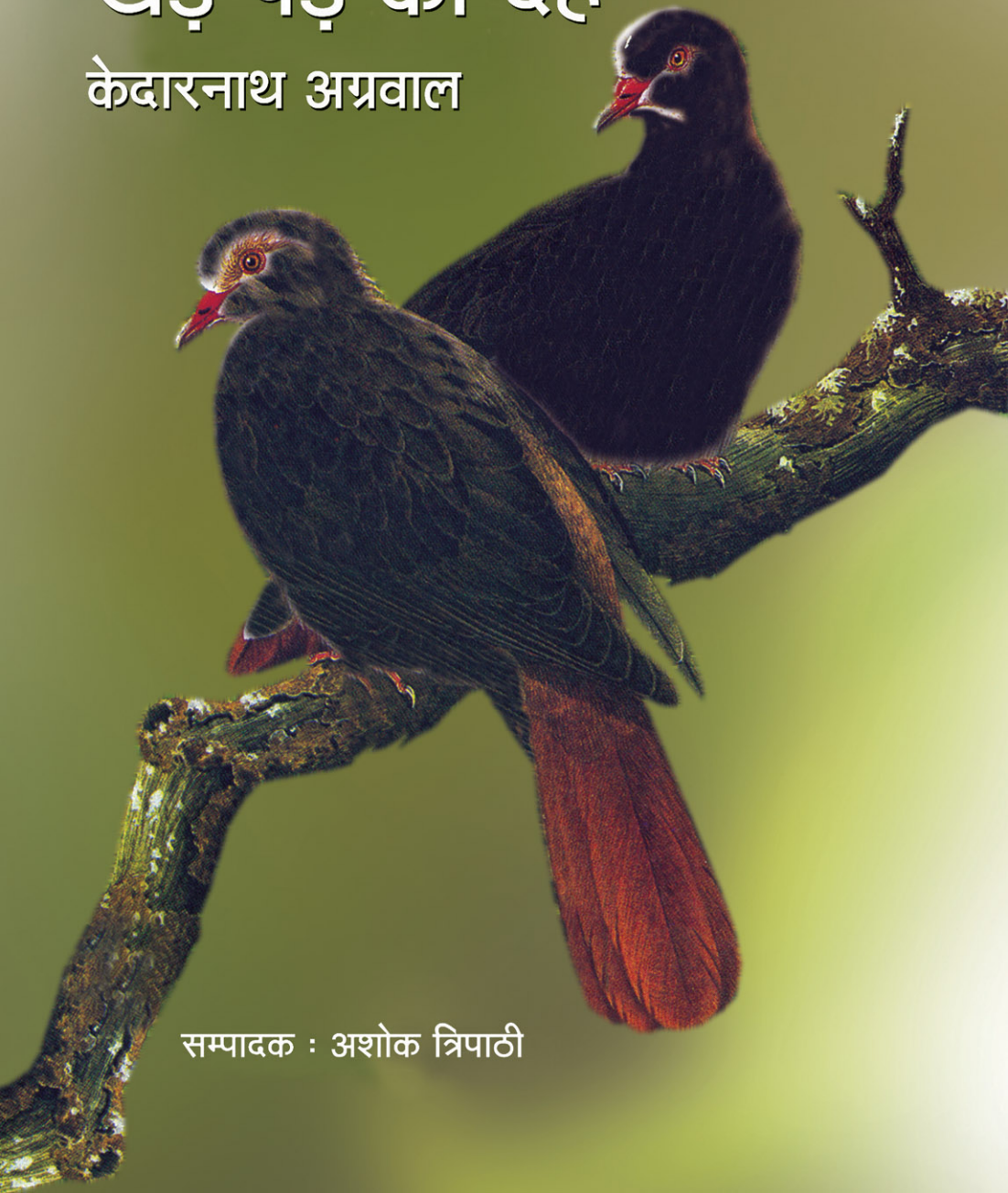


कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह

केदारनाथ अग्रवाल



सम्पादक : अशोक त्रिपाठी

कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह

(केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ)

सम्पादक

डॉ० अशोक त्रिपाठी



साहित्य भंडार

इलाहाबाद 211 003

ISBN : 978-81-7779-190-7



प्रकाशक

साहित्य भंडार

50, चाहचन्द, इलाहाबाद-3

दूरभाष : 2400787, 2402072



लेखक

केदारनाथ अग्रवाल



स्वत्वाधिकारिणी

ज्योति अग्रवाल



संस्करण

साहित्य भंडार का

प्रथम संस्करण : 2009



आवरण एवं पृष्ठ संयोजन

आर० एस० अग्रवाल



अक्षर-संयोजन

प्रयागराज कम्प्यूटर्स

56/13, मोतीलाल नेहरू रोड,

इलाहाबाद-2

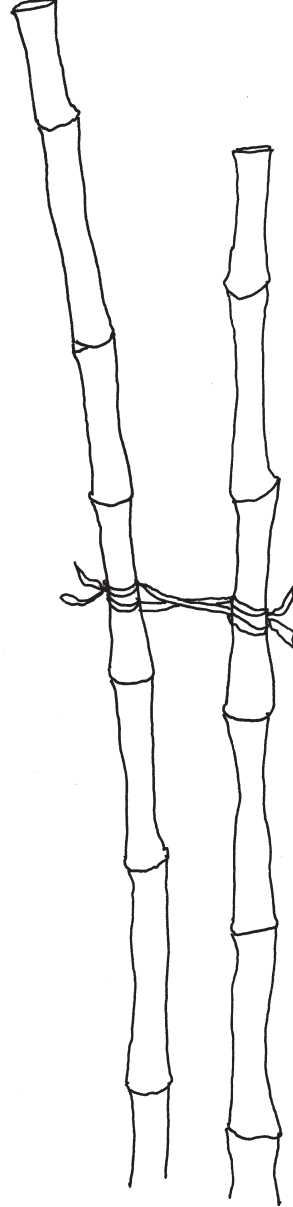


मुद्रक

सुलेख मुद्रणालय

148, विवेकानन्द मार्ग,

इलाहाबाद-3



मूल्य : 275.00 रुपये मात्र

कुहकी कोयल
खड़े पेड़ की देह



प्रकाशकीय

इस संकलन का प्रकाशन 'साहित्य भंडार' के प्रथम संस्करण के रूप में सम्पन्न हो रहा है। केदारजी के उपन्यास 'पतिया' को छोड़कर, उनके शेष समस्त लेखन को प्रकाशित करने का गौरव भी 'साहित्य भंडार' को प्राप्त है। केदारनाथ अग्रवाल रचनावली (सं० डॉ० अशोक त्रिपाठी) का प्रकाशन भी 'साहित्य भंडार' कर रहा है।

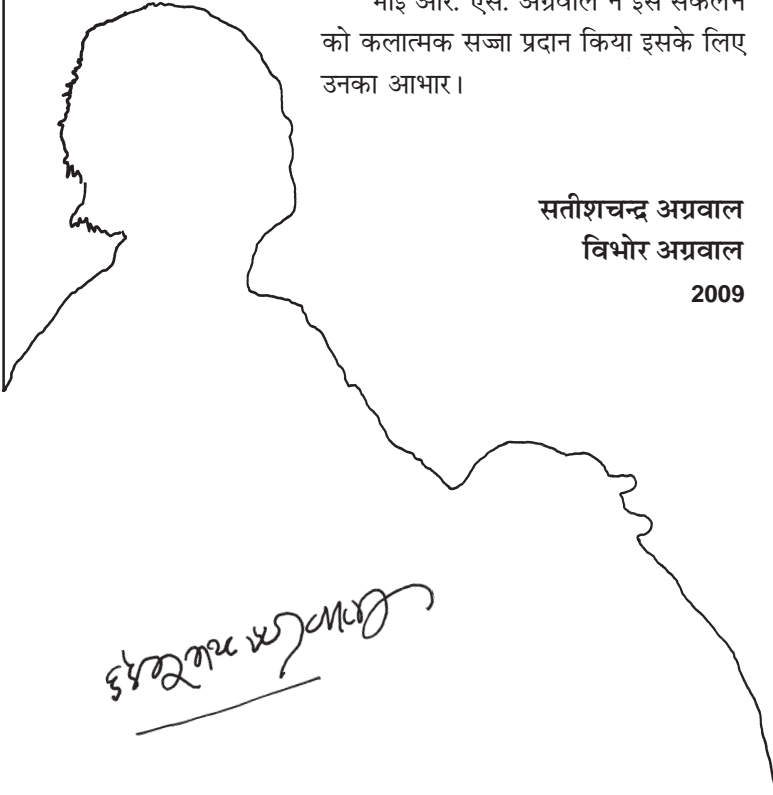
एक तरह से केदार-साहित्य का प्रकाशक होने का जो गौरव 'साहित्य-भंडार' को मिल रहा है उसका श्रेय केदार-साहित्य के संकलन-संपादक डॉ० अशोक त्रिपाठी को जाता है उसके लिए 'साहित्य-भंडार' उनका आभारी है। यह गौरव हमें कभी नहीं मिलता यदि केदार जी के सुपुत्र श्री अशोक कुमार अग्रवाल और पुत्रवधू श्रीमती ज्योति अग्रवाल ने सम्पूर्ण केदार-साहित्य के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार हमें नहीं दिया होता। हम उनके कृतज्ञ हैं।

भाई आर. एस. अग्रवाल ने इस संकलन को कलात्मक सजा प्रदान किया इसके लिए उनका आभार।

सतीशचन्द्र अग्रवाल

विभोर अग्रवाल

2009



इस संकलन का प्रकाशन

केदारजी के 'प्रिय डाक्टर'
ऋषि-परम्परा के मूर्त रूप
आदरणीय रामविलासजी शर्मा
को
उनके सखा 'प्रिय केदार' के
सत्तासीवें जन्म-दिन पर
कृतज्ञ अर्पण

सम्पादकीय

‘कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह’ प्रकाशन-क्रम में केदारजी का बीसवाँ काव्य-संग्रह है। इस संग्रह में सन् 1956 से लेकर सन् 1978 तक की वे चार सौ छत्तीस कविताएँ संकलित हैं जो इसके पूर्व प्रकाशित संग्रहों में ‘शायद’ नहीं छपी हैं। ‘शायद’ इसलिए कि इस संग्रह की सारी कविताओं के साथ, केदारजी के अब तक प्रकाशित संग्रहों की कविताओं को कई बार पढ़ चुका हूँ। ऐसे में इस संग्रह को तैयार करते समय, यह तय कर पाना कठिन रहा है कि कविता विशेष को इन कविताओं के संकलन के दौरान पढ़ चुका हूँ या फिर पूर्व प्रकाशित किसी संकलन में। इसीलिए सावधानी बरतने के बाद भी, यह दावा कतई नहीं है कि किंचित भी दुहराव नहीं होगा। पर यह दावा जरूर है कि उनकी पुरानी कविताओं में अब एक भी कविता ऐसी नहीं है जो उनके पास रही हो और संकलन में प्रकाशित न हो। अगर उन्होंने कहीं कुछ अलग से चुरा-छिपाकर रखा हो या उनके किसी मित्र या पाठक के पास हो तो बात दीगर है। मुझे जो काव्य संपदा उन्होंने सौंपी थी, वह सब-की-सब, इस संकलन के साथ प्रकाश में आ चुकी है। उसके बाद अब बारी है उनके गद्य-साहित्य की। उस पर काम चल रहा है।

प्रस्तुत संग्रह के अतिरिक्त मेरे द्वारा संपादित केदारजी की कविताओं के चार संकलन-‘कहें केदार खरी-खरी’ (1983), ‘जमुन जल तुम’ (1984), और ‘जो शिलाएँ तोड़ते हैं’ (1986), ‘वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी’(1996) प्रकाशित हो चुके हैं। पहले दोनों संग्रहों की कविताओं का चयन विषय-वस्तु के आधार पर और क्रम-निर्धारण काल-क्रम के आधार पर किया गया है। तीसरे, चौथे और इस पाँचवे संकलन की कविताओं के चयन का कोई विषयगत आधार नहीं है। इनके प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि इन कविताओं के प्रकाशन से पाठक/अनुसंधित्सु केदारजी की रचना-यात्रा के विकास-क्रम को पूरी समग्रता में पहचान सकें। इसीलिए इन कविताओं का संयोजन काल-क्रम के आधार पर किया गया है।

इस संकलन में कुछ कविताएँ जरूर ऐसी हैं, जो विषय की दृष्टि से ‘कहें केदार खरी-खरी’ (विषय-वस्तु राजनीति) और ‘जमुन जल तुम’ (विषय-

वस्तु प्रेम) में प्रकाशित होनी चाहिए थीं। लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त उल्लिखित संग्रहों में विषय-वस्तु विशेष से जुड़ी वही कविताएँ संकलित की गई हैं जो उस समय लगभग फाइनल स्थिति में मिलीं। इस संकलन और 'वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी' की अधिसंख्य कविताएँ ऐसी हैं जो रचना-प्रक्रिया में थीं। कुछ तो अधूरी भी प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि कुछ कविताओं के एक से अधिक प्रारूप मिलते हैं। पाद-टिप्पणियों के द्वारा यथास्थान इसका संकेत किया भी गया है। प्रस्तुत संग्रह में कुछ कविताएँ ऐसी भी मिलेंगी जो आगे चलकर पुनः परिष्कृत रूप में मिलती हैं। बाद में लिखी और प्रकाशित कुछ कविताओं की गूँज भी इस संग्रह की कुछ कविताओं में विद्यमान हैं। इस तरह के प्रमाणों के जरिये केदारजी की रचना तकनीकि और रचना प्रक्रिया को समझने में बहुत मदद मिल सकती है।

कुछ कविताओं के शीर्षक केदारजी ने दिए हैं और कुछ के नहीं। जिनका शीर्षक नहीं था उनका भी शीर्षक दे दिया गया है- पाद-टिप्पणियों से इनका स्पष्टीकरण हो जाता है। ऐसा इसलिए किया गया है कि यदि ये शीर्षक उपयुक्त नहीं हैं, तो इसका अपराधी मैं हूँ- केदारजी नहीं।

इस संग्रह के तीन विभाग हैं—(क) वे कविताएँ जिनकी रचना-तिथि केदारजी ने दी है। (ख) वे कविताएँ जिनकी रचना-तिथि केदारजी ने नहीं दी है। [ऐसी कुछ कविताओं के संभावित रचनाकाल मैंने दिये हैं। संभावना का आधार, इन कविताओं का इसी सन् में लिखी अन्य रचनाओं के साथ लिखा जाना या फिर उस वर्ष की किसी खास घटना का उस कविता में उल्लेख रहा है] (ग) केदारजी की अनूदित कविताएँ।

अनूदित कविताएँ केदारजी के यहाँ से मुझे एक ही मिली थीं- 'दिन अँधेरा मेघ झरते।' शेष कविताएँ तो आदरणीय डॉ० रामविलास शर्मा को लिखे केदारजी के पत्रों में मिलीं। 'सम्मान केदार' के अवसर पर 1986 में ये कविताएँ रामविलासजी ने मुझे केदारजी के आवास पर लिखवाई थीं, जिन्हें वह इसी उद्देश्य से अपने साथ ले आए थे। अगर उन्होंने यह कृपा न की होती तो ये अनुवाद पाठकों को उपलब्ध न हो पाते। उनके इस स्नेह का मैं ऋणी रहूँगा।

कविताओं में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग अक्सर हुआ है। नुक्ते वाले शब्दों में कहीं तो नुक्ता मिलता है और कहीं नहीं। मैंने एक धृष्टता की है कि ऐसे शब्दों का हिन्दीकरण कर दिया है अर्थात् नुक्ता हटा दिया है। तर्क यह है

कि हिन्दी भाषाभाषी अपनी आम बोलचाल में ऐसे शब्दों का जो रूप उच्चरित करते हैं वह नुक्ताहीन उच्चारण ही होता है। कहाँ नुक्ता होगा, कहाँ नहीं होगा, इसका निर्णय करने के लिए लिपि का ज्ञान आवश्यक है, और इस ज्ञान का लगभग पूर्णतः अभाव-सा है। ऐसे में अक्सर 'शुद्धता' के चक्कर में नुक्ते के प्रयोग की-लिखने और बोलने, दोनों में-भूल होती रहती है। इसी तर्क से अरबी-फारसी के नुक्ते वाले शब्दों को नुक्ताहीन करके उनका हिन्दीकरण किया गया है।

केदारजी ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा, इसके बावजूद वे महा-काव्यात्मक व्यापकता के कवि हैं। विषय का जो अनंत वैविध्य, अनुभव और संवेदन का जो वृहत् संसार उनके पूर्व प्रकाशित कविता-संग्रहों में है, यह संग्रह भी उसी की पुष्टि करता है। उनकी कविताओं में केवल विषय का ही वैविध्य नहीं मिलता है, वरन् एक ही विषय को बार-बार देखने, समझने और उसे विश्लेषित करने की दृष्टि में भी वैविध्य है। एक ही विषय पर उन्होंने कई-कई कविताएँ लिखी हैं और जितनी कविताएँ लिखी हैं, सबमें वह विषय अलग-अलग दिखाई देता है। उसके नये-नये रूप, नये-नये आयाम हमारे सामने उद्घाटित होते हैं। हर कविता की धूप, हर कविता की नदी, हर कविता का सूर्य, हर कविता का गेहूँ, अपनी अलग-अलग छवियों और ध्वनियों के साथ हमारे संवेदन-जगत् को समृद्ध करता है।

इस संग्रह की कविताओं को पाठकों तक पहुँचाने में भाई अश्विनीकुमार उपाध्याय और श्रीमती गीता उपाध्याय की बुनियादी भूमिका रही है। बाँदा में इन्हीं के आतिथ्य में एक महीने रहकर केदार-साहित्य का संकलन संभव हो सका। सचमुच इनका आभारी हूँ। कलात्मक आवरण सज्जा के लिए भाई राधेश्याम अग्रवाल तथा सुरुचिपूर्ण शब्द-संयोजन और मुद्रण के लिए अजय प्रिंटर्स के भाई अजयजी का भी आभारी हूँ।

अग्रज शिवकुमार सहाय तो इसकी प्रेरणा ही हैं- यह तो उन्हीं का संकल्प है, जिसे पूरा करने का मैं निमित्त भर हूँ। फिर भी मात्र औपचारिकता निर्वाह के लिए उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस संग्रह की तैयारी नौकरी के समय के बाद के क्षणों में ही सम्भव हो सकी है। और इन क्षणों पर मेरी पत्नी-सावित्री, मेरे बच्चों-सौरभ, श्रुति व स्मृति का अधिकार है। मैंने उनके इस अधिकार का हरण करके ही, यह काम सम्पन्न किया है। उनका अपराधी होते हुए भी, उन्हींने मुझे कभी

अपराध-बोध नहीं होने दिया। अब मेरे अन्दर भी इतनी मनुष्यता तो होनी ही चाहिए कि इनके प्रति आभार प्रकट करूँ- सो कर रहा हूँ।

अन्त में आदरणीय बाबू केदारनाथ अग्रवाल को उनके सत्तासीवें जन्म-दिन पर उन्हीं की कविताओं के इस संग्रह के माध्यम से अपना प्रणाम निवेदित करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ कि उन्होंने अपने साहित्य के प्रकाशन की हमारी योजनाओं पर कभी किसी तरह की अड़ंगेबाजी नहीं लगाई। हमें पूरी छूट दी कि हम जैसे चाहें उसका उपयोग करें। उनके इस स्नेह और विश्वास के ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो पाएँगे।

उम्मीद है यह संग्रह केदार-साहित्य के आस्वादन, मूल्यांकन और विश्लेषण में सुहृद पाठकों/अलोचकों/अनुसंधित्सुओं को मदद पहुँचाएगा।

होलिकोत्सव

24 मार्च, 1997

दिल्ली

- अशोक त्रिपाठी



अनुक्रम

1. अजेय ही अड़े रहो / 19	1956	29. अभी न जाओ / 28	30.4.61
2. दिन बीत गया / 19	7.2.56	30. धूप और चाँदनी / 29	13.6.61
3. चुप / 19	9.3.57	31. दहककर जल	
4. तुम कुछ हो / 20	25.3.58	चुके हैं / 29	16.6.61
5. तुम ऐसी ही एक कली हो / 20	27.3.58	32. कतर रही है	
6. फूल हो तुम / 21	5.6.58	हमको चिंता / 30	27.6.61
7. हे मेरी तुम / 21	25.6.58	33. नहीं तो आया	
8. आत्मबोध / 21	अक्टूबर, 1959	अब तक मेघ / 30	30.6.61
9. मनुष्य / 21	30.9.60	34. अब आई चंचला	
10. याद / 22	3.10.60	शरण में / 30	15.7.61
11. दम्भी बादल / 22	3.10.60	35. जीवित चिड़िया	
12. दिन अच्छा है / 22	9.1.61	सिसक रही है / 31	16.7.61
13. यातना / 23	9.1.61	36. मैं वह नहीं	
14. तप रहा है सूर्य		बजा घंटा हूँ / 31	16.7.61
मध्याह्न का / 23	9.1.61	37. दिनकर की किरनों	
15. सुन्दर बनाते हैं		से भारी / 32	16.7.61
दिन को / 24	9.1.61	38. सपना और अपना / 32	16.7.61
16. पुनरुद्धार की प्रतीक्षा / 24	16.1.61	39. हवा-एक-दो / 32	16.7.61
17. न जाओ मेरे		40. नदी-धूप से	
दोस्त / 25	19.1.61	मिलने / 32	30.7.61
18. सुख / 25	25.1.61	41. जवान दिन / 33	1.8.61
19. मैं मगन मन / 25	25.1.61	42. अंधकार / 33	7.8.61
20. पुल छोटे पहिए		43. स्वार्थ और स्नेह / 33	7.8.61
छोटे / 26	28.1.61	44. क्या हो गया है हमें / 33	8.8.61
21. खुशी / 26	1.2.61	45. हार्ट फेल हो गया है	
22. गौरैया और मैं / 27	4.2.61	पावर हाउस का / 34	10.8.61
23. दर्पण / 27	4.2.61	46. अडिग रहा हूँ	
24. सागर था वह / 27	4.2.61	अडिग रहूँगा / 34	15.9.61
25. रोशनी दो रोज / 27	2.3.61	47. अफसर / 34	23.9.61
26. आग और बर्फ		48. गांधीजी के जन्म-	
की वसीयत का		दिवस पर / 35	26.9.61
लेख / 28	1.4.61	49. एक चिड़िया	
27. कुछ ऐसे भी लोग		उड़ गई है / 36	6.10.61
मिले हैं / 28	1.4.61	50. दूब / 36	1.11.61
28. गंध महकते अंग / 28	8.4.61	51. पुञ्ज-पुञ्ज संजीवन	
		बरसे / 36	10.11.61

52.	वरदवीणा हुई दीना / 37	11.11.61	81.	न जीना न मरना / 49	13.9.65
53.	चित के चित्र / 37	23.11.61	82.	मेरा आधार खम्भ / 50	14.9.65
54.	क्या यह भूतल मौन रहेगा / 38	25.11.61	83.	धूप में कहीं खो गया है मनुष्य / 51	14.9.65
55.	वह इस युग का / 38	25.11.61	84.	मेरा नाम कल / 51	14.9.65
56.	स्वर्ण के शतदल कलश / 38	25.12.61	85.	बड़ा कठिन है / 52	15.9.65
57.	गाए चली जा रही है / 39	25.2.61	86.	सत्य और असत्य / 52	15.9.65
58.	मुझे बनाए सपना / 39	1.1.62	87.	सत्य का कत्ल हुआ / 52	15.9.65
59.	हरिण हेम के / 40	1.1.62	88.	संकट की राजनीति / 53	17-18.9.65
60.	विरज में रोए / 40	12.1.62	89.	जीता जीवन-हारी मौत / 55	18.9.65
61.	जहाँ गिरा वह सूर्य / 40	12.2.62	90.	वह जो 'है' और 'नहीं है' / 56	18.9.65
62.	केन / 41	12.2.62	91.	नगर निकल आया है सड़कों पर / 56	23.9.65
63.	मौन का वैराग्य पिघला / 41	16.3.62	92.	उस दृष्टि ने मुझे उठा लिया / 57	24.9.65
64.	अकाट्य है / 42	20.3.62	93.	भविष्य की पुकार / 58	24.9.65
65.	सारथी हूँ सर्जना का / 42	18.7.62	94.	यह लड़की / 58	24.9.65
66.	वे / 42	30.7.62	95.	कायों का नहीं वीरों का भारत / 59	25.9.65
67.	सुभटकाय मेघों का संघट / 42	3.8.62	96.	स्थितप्रज्ञ अपना देश / 61	27.9.65
68.	हँस रहा है उधर / 43	10.9.62	97.	मरा हुआ पानी / 63	27.9.65
69.	ऊँधती है आग / 43	10.11.62	98.	खोखले आदमी / 64	29.9.65
70.	अपना सपना धूल बनाकर / 44	5.4.63	99.	नदी में डूबा मैं / 65	30.9.65
71.	न हट सका...एक / 44	3.2.64	100.	यह हमारा देश भारत / 65	4-5.10.65
72.	धूप हो या धुआँ / 45	5.3.64	101.	केन, मैं और तुम / 66	5.10.65
73.	नहीं सुनता आदमी / 45	7.11.64	102.	जबानबंदी का शहंशाही एलान / 66	6.10.65
74.	आए और चले गए / 45	18.11.64	103.	कुँवारी / 67	6.10.65
75.	छूँछे घड़े / 46	6.3.65	104.	दौलत / 67	6.10.65
76.	विकल वामा / 46	14.3.65	105.	गरीबी / 67	6.10.65
77.	अपना-अपना क्षितिज / 46	10.8.65	106.	हमकों है जीने का दम / 68	11.10.65
78.	तुम्हारी आवाज / 47	19.8.65	107.	समय का संविधान / 68	13.10.65
79.	ताव खाया सूरज / 48	28.10.65	108.	माँगने से नहीं मिलती शांति / 69	13.10.65
80.	मटर का एक दाना और मैं / 48	13.9.65			

109.	कविता में पत्र डॉ० शर्मा को / 69	13.10.65	138.	आदमी को शक है / 81	28.7.67
110.	साधारण मनुष्य / 70	14.10.65	139.	अकाल से लड़ता कमासिन / 81	29.7.67
111.	न हट सका —दो / 71	14.10.65	140.	समय / 83	2.8.67
112.	कृपणता / 71	14.10.65	141.	लकीरें काटती हैं / 83	6.8.67
113.	पुल टूट गया है / 71	14.10.65	142.	समय को पी रहा हूँ मैं / 83	24.8.67
114.	हम सौंचते हैं आग के खेत / 71	14.10.65	143.	नशे में है अब समय / 84	25.8.67
115.	कोयले का ब्याह हुआ चीनी से / 72	14.10.65	144.	पंख पा गई मृदंग की आवाज / 85	1.9.67
116.	इश्तहार / 72	17.10.65	145.	सब है मगर कुछ नहीं है / 85	6.10.67
117.	फासला / 72	17.10.65	146.	आपद्धर्म / 85	6.10.67
118.	आदमी मजबूर है बिकने के लए / 72	17.10.65	147.	फकत नाम / 86	6.10.67
119.	हमारा संकल्प / 73	20.10.65	148.	सुरागरसी में निकला चाँद / 86	8.10.67
120.	उस दिन जो तुमने कहा / 73	25.10.65	149.	आदिम गुनाह में कैद / 86	8.10.67
121.	न कोई है / 74	25.10.65	150.	केन्द्र / 87	17.10.67
122.	देह का विदेह / 74	25.10.65	151.	हमको मिले पद्माकर / 88	1967
123.	जमीन पर चलता हुआ मैं / 74	25.10.65	152.	एक बच्चा हँसा / 89	1967
124.	समय का शंख / 74	28.10.65	153.	खाली जेब और चाय का प्याला / 90	1967
125.	धूप के अखबार में / 75	29.10.65	154.	मौत को पढ़ रही है जिंदगी / 91	19.10.67
126.	गंध में उड़ रहा गुलाब / 75	13.12.65	155.	दमी आदमी / 91	20.10.67
127.	खाली कटोरियाँ / 75	29.12.65	156.	चाँद झुक गया है / 92	22.10.67
128.	न मैं किसी का / 76	20.10.66	157.	वह न अंधकार चाहता है न प्रकाश / 92	23.10.67
129.	न जानने के पहले / 76	15.1.67	158.	आग / 93	25.10.67
130.	पते से दूर / 76	20.1.67	159.	लिबास / 93	26.10.67
131.	कुछ नहीं है / 77	26.1.67	160.	जेब के फटे कोट / 93	26.10.67
132.	वह न जाएँगे अभी / 77	19.2.67	161.	घंटा / 94	26.10.67
133.	शराब जो आँख में है / 79	10.3.67	162.	है / 94	27.10.67
134.	न जानों मुझे / 79	11.4.67			
135.	पिये ज्ञान को / 79	1.4.67			
136.	अनाज न होने का / 80	14.7.67			
137.	न कोई है / 80				

163.	नदी नहीं हो सकती आदमी / 95	29.10.67	190.	मैंने कुछ नहीं कहा / 107	11.3.68
164.	मुझे नहीं जाना उस ओर / 96	30.10.67	191.	कोई है / 108	17.3.68
165.	दफ्तर के बाबू / 97	4.11.67	192.	नदी है / 108	2.4.68
166.	आराम / 97	5.11.67	193.	केला / 108	4.4.68
167.	तुमसे नहीं / 97	6.11.67	194.	अतल तम है / 109	4.4.68
168.	मांसपिंड में बँधा / 98	9.11.67	195.	हो न हो सुबह / 109	7.4.68
169.	आत्मिक प्रकाश / 97	11.11.67	196.	मृत्युञ्ज उपाध्याय के प्रति / 109	15.4.68
170.	प्रकाश का सूरज / 99	11.11.67	197.	राजकमल पर / 110	17.4.68
171.	दर्द / 88	18.11.67	198.	धूप हुई आँधी / 112	23.4.68
172.	मर गए हैं बिना मरे / 99	20.11.67	199.	हमारा कोई चेहरा नहीं है अपना / 113	12.5.68
173.	पश्चिमी बंगाल के दो रूप / 100	22.11.67	200.	न दिल में दिया न आँख में रोशनी / 113	13.5.68
174.	बगुली ने वार क्रिया / 100	29.11.67	201.	हवा ने छेड़ दिए / 114	14.6.68
175.	सिवाय उस अनंत के / 100	13.12.67	202.	स्वर का समारोह / 115	27.6.68
176.	न द्वार खुला / 101	27.12.67	203.	गाँव की सड़क / 115	23.8.68
177.	मेरे पाँव मुझे पकड़े हैं / 102	28.12.67	204.	उपन्यास- एक / 116	25.11.68
178.	पकड़ नहीं पा रहा / 102	28.12.67	205.	उपन्यास- दो / 116	25.11.68
179.	द्वन्द्व के बगैर / 102	28.12.67	206.	उपन्यास- तीन / 116	25.11.68
180.	आदमी का पानी / 103	29.12.67	207.	उपन्यास- चार / 117	26.11.68
181.	न मरे हैं हम / 103	4.1.68	208.	उपन्यास- पाँच / 117	26.11.68
182.	न आदमी है / 104	18.1.68	209.	उपन्यास-छः / 117	26.11.68
183.	नदारद अस्तित्व का अनंत सुनसान / 104	27.1.68	210.	उपन्यास-सात / 117	26.11.68
184.	गांधी के चित्र को देखकर / 105	30.1.68	211.	गधों के निकल आए हैं पैसे	27.1.69
185.	न डूबे हैं जहाँ / 105	3.3.68	212.	सौंग / 118	29.1.69
186.	दल बदल / 106	11.3.68		घर के फूल / 118	
187.	सुबह न हुई / 106	11.3.68			
188.	पया राम हो गया है / 106	11.3.68			
189.	अपना सुख अपने आदमी के साथ / 106	11.3.68			

213.	शब्द हो गए हैं नंगे / 118	31.1.69	239.	झूठ अब झूठ से लड़ता है / 129	3.6.70
214.	सूर्य की अंधी आँख खुली है / 119	19.2.69	240.	विधाता / 129	11.6.70
215.	जिधर पहुँच जाती है तुम्हारी छाया / 119	6.3.69	241.	मैंने अब तक मति बेची है / 130	18.6.70
216.	दर्द के सिर में / 119	9.3.69	242.	न्याय की कुरसी / 130	19.6.70
217.	कोई देखता है मुझे / 120	14.3.69	243.	आँख से हँसो / 131	20.6.70
218.	कागज में लिखे लोग लेते हैं साँस / 120	14.3.69	244.	त्रिलोचन / 131	28.8.70
219.	कीमतेँ / 120	24.4.69	245.	समय का शीशा / 132	31.8.70
220.	घूस का घोड़ा / 121	15.4.69	246.	दिये के सिर पर सवार / 132	31.8.70
221.	बाँदा की गरमी में नल का पानी / 121	25.5.69	247.	नदी और हाथी / 133	31.8.70
222.	चिनगी / 122	30.5.69	248.	मौत हो गई सुबह की / 133	11.9.70
223.	बादल / 122	24.7.69	249.	श्रम का वेद / 133	15.9.70
224.	मैं और तुम / 122	27.7.69	250.	अहं / 134	12.10.70
225.	कुंठित संज्ञा / 123	27.7.69	251.	हवा के घोड़े / 135	12.10.70
226.	आदमी-एक / 123	27.7.69	252.	दिये को दबोच नहीं सका अँधेरा / 135	12.10.70
227.	आदमी-दो / 123	27.7.69	253.	बिन्दु का अस्तित्व / 135	21.10.70
228.	हम आदमी नहीं/ 124	सितम्बर 69	254.	क्षण / 136	21.10.70
229.	कट चुके खेत में / 124	सितम्बर 69	255.	तुम्हीं आओं न / 136	21.10.70
230.	ताल में तैरती है / 125	20.3.70	256.	न आये की प्रतीक्षा में / 137	21.10.70
231.	बेकार हूँ मैं / 125	23.3.70	257.	स्वर / 137	22.10.70
232.	गीत/125	2.4.70	258.	ब्राँज का घोड़ा / 138	22.10.70
233.	हरेक बंद है / 126	3.4.70	259.	याद से बाहर / 138	22.10.70
234.	सूरज और मेमना / 127	3.4.70	260.	दर्पण हुआ पानी / 138	23.10.70
235.	खोपड़ों पर लट्ट / 127	9.4.70	261.	आँखों में आसमान डूबा है / 139	23.10.70
236.	परम्परा / 128	18.4.70	262.	जो कुछ किया है / 139	23.10.70
237.	अंडा-मुरगी / 128	19.4.70			
238.	सच-झूठ / 128	3.6.70			

263.	हम बिन्दु हैं / 139	23.10.70	291.	बन्द आँखें: खुली	
264.	तुम और मैं / 140	23.10.70		आँखें / 154	26.8.71
265.	फूल / 140	23.10.70	292.	तुम झूठ	
266.	कोई एक क्षण अकेला			बोलते हो / 154	1.9.71
	नहीं है / 140	5.11.70	293.	न्याय-अन्याय / 155	1.9.71
267.	करमदंड / 141	10.11.70	294.	हम तो / 155	1.9.71
268.	चमके छवि		295.	हैरान जिन्दगी / 156	1.9.71
	के केतन / 141	13.11.70	296.	गाँव के खूँटे / 157	4.9.71
269.	गीत ने गूँज पा		297.	कायों अपने ओठ / 158	5.9.71
	ली है / 142	14.11.70	298.	ढलते सूर्य की ढलती	
270.	रार और दाँती /142	20.11.70		देह में / 158	12.9.71
271.	टाँड़ / 143	15.12.70	299.	ईद मुबारक / 159	21.11.71
272.	गर्म-सर्द		300.	अपनी ही ठठरी में	
	हवाएँ / 143	25.12.70		सूखे हैं / 160	31.11.71
273.	बेकार हो		301.	मैं जीता हूँ	
	गया है / 144	30.12.70		तुमको / 161	31.11.71
274.	मरे का नाम		302.	राह से मिली	
	मुरदा है / 144	19.3.70		राह / 161	7.3.72
275.	खजुराहो में / 144	21.3.70	303.	टिवस्ट करती है नागिन	
276.	खजुराहो जाते में /145	22.3.70		बिजली / 161	14.3.72
277.	मैं हैरान / 147	24.3.71	304.	कबीर / 162	19.3.72
278.	इंतजार में		305.	राजा भोगते हैं प्यार	
	तुम्हारे / 147	24.3.71		के समपने / 163	11.6.72
279.	दल बँधा फूल / 147	24.3.71	306.	आदमी मरा	
280.	उठ गया है समय			नहीं / 164	12.6.72
	का परदा / 147	24.3.71	307.	सूरज खींच रहा है	
281.	तुम पा गए / 148	10.4.71		फोटो / 164	24.6.72
282.	यही है वह		308.	तुम्हें बधाई / 165	25.6.72
	दिन / 149	12.34.71	309.	वह पिनाक था	
283.	अलग का			परंपरा का / 165	27.8.72
	व्यक्तित्व / 151	5.6.71	310.	मैं और तुम / 166	19.11.72
284.	मेल और मिलाप /150	5.6.71	311.	न कुछ से कुछ /167	19.11.72
285.	नारियल		312.	समय और	
	के पेड़ / 151	18-21.6.71		आदमी / 168	21.11.72
286.	गुहा में / 151	9.7.71	313.	हिप्पी / 168	12.12.71
287.	पहिए / 152	12.8.71	314.	सिफारिश	
288.	देश का दुर्भाग्य /153	12.8.71		मुरदों की / 169	15.12.71
289.	उड़ गया		315.	निक्सन / 169	21.12.72
	कबूतर / 153	20.8.71	316.	गलतबयानी / 170	23.3.72
290.	दिन का दंगल		317.	निर्धन का मन /170	27.3.72
	उदस गया है / 154	24.8.71	318.	जेठ का	
				जुल्म / 170	25-26.5.73

319.	अंधे बादल / 171	22.6.72	350.	सुबह की	
320.	श्री सुदामा पांडे 'धूमिल'			शहजादी / 187	7.6.76
	की 10-2 की मृत्यु का		351.	धूप के बरजिया घोड़े	
	समाचार पढ़कर / 172	13.2.74		पर सवार / 188	7.6.76
321.	बेजा एहसास / 173	2.9.74	352.	शाम की	
322.	सौंदर्य में सराबोर / 173	1.11.74		शरबतिया / 188	8.6.76
323.	मानवेतर होने		353.	रूप और रंग के	
	का भ्रम / 174	19.11.74		पखेरू / 189	8.6.76
324.	नदी / 174	27.1.75	354.	हर्ष का हंस / 189	8.6.76
325.	रात हुई, सो गए / 175	29.1.75	355.	काठ का उल्लू	
326.	रंगीन तितलियाँ / 176	4.2.75		बोलता है / 189	9.6.76
327.	पैसा / 176	4.2.75	356.	दाब में धूप को	
328.	फूल हैं / 176	6.2.75		दबाये / 190	9.6.76
329.	घूसिए / 177	8.2.75	357.	आज का	
330.	अंधे / 177	10.2.75		दल डूबा / 191	9.6.76
331.	परोपजीवी / 178	20.2.75	358.	इतवार में	
332.	पेड़ के पुरखे / 178	20.2.75		मदरास / 191	13.6.76
333.	उसकी हंसी / 178	9.3.75	359.	यहाँ भी औरतें / 193	13.6.76
334.	वे तीस साल / 179	10.4.75	360.	यहाँ भी	
335.	गड़गड़ाते गगन छाए			आदमी / 193	14.6.76
	मेघ / 179	2.6.75	361.	यहाँ भी लोग / 194	14.6.76
336.	ऊपर को उड़ा / 180	30.6.75	362.	धर्म की ग्रंथियाँ / 194	15.6.76
337.	जोगी / 181	8.9.75	363.	गलफुल्ले आम / 195	16.6.76
338.	सबरे की आग / 181	8.10.75	364.	सागर / 195	16.6.76
339.	समय को पी		365.	बेगमपल्ली	
	रहा मैं / 182	2.11.75		आम / 195	16.6.76
340.	जीना / 182	17.11.75	366.	मालगोवा आम / 196	16.6.76
341.	भारतीय कम्युनिष्ट		367.	जाले / 196	17.6.76
	पार्टी के प्रति / 182	20.11.75	368.	छोटे-छोटे हाथ / 197	17.6.76
342.	आम की तरह		369.	मैं बच्चा हूँ / 197	17.6.76
	बौराए हैं हम / 183	23.3.76	370.	मर्द का बच्चा / 198	19.6.76
343.	मेघ नट हैं / 184	13.4.76	371.	एक और दिन	
344.	शून्य-शून्य का			हुआ / 198	19.6.76
	योग / 185	25.4.76	372.	पेड़ / 199	21.6.76
345.	तापित सूरज / 185	5.5.76	373.	रूष्ट हैं अन्न	
346.	दक्षिण के परम प्रतिष्ठित			की देवी / 199	28.6.76
	देवता / 185	6-7.5.76	374.	बादल आए गोल	
347.	ब्याही-			बाँधकर / 200	28.7.76
	अनब्याही / 186	7.5.76	375.	नदी की तेज	
348.	जना खाना / 186	9.5.76		धार / 200	28.7.76
349.	कुहकी कोयल खड़े		376.	गुट्टी की	
	पेड़ की देह / 187	5.6.76		मृत्यु पर / 201	28.8.76

377.	ईंट / 201	3.9.76	407.	गोमती / 228	1975
378.	गुलनार-गुलनार हो गया आसमान / 202	7.9.76	रचनाकाल-रहित कविताएँ		
379.	तब मैं / 202	18.9.76	408.	भूमि की प्रिया / 228	
380.	भिखारिन / 203	18.9.76	409.	हल हाथ है उसी का / 229	
381.	बबूल / 204	6.10.76	410.	मेरी सत्ता / 230	
382.	रात की रानी / 204	8.11.76	411.	रात ही है यह विरह की / 230	
383.	ठाकुरप्रसाद सिंह के आने पर / 205	27.2.77	412.	जल उट्टूँ मैं / 231	
384.	चरणसिंह की जनता पार्टी / 205	28.2.77	413.	उसकी देह / 231	
385.	वृहत्त्रयी का आक्रमण / 205	29.3.77	414.	सिताए पटाखे / 232	
386.	पहली अप्रैल को पहली बार / 206	1.4.77	415.	आदमी नहीं हो पाया आदमी / 232	
387.	मैं नहीं चाहता / 206	12.6.77	416.	मोम का ममी / 233	
388.	दोस्त / 207	13.6.77	417.	साँझ / 233	
389.	लूक / 207	16.6.77	418.	निर्माण का गीत / 233	
390.	बाल भिखारिन / 208	16.6.77	419.	रश्मियाँ रँगती रहेंगी / 235	
391.	मैं कुछ नहीं जानता / 208	29.6.77	420.	दिवस शरद के / 235	
392.	सन्नाटे का लान / 210	13.7.77	421.	पत्ता वह मैं हूँ / 235	
393.	रेल-इंजन / 210	15.6.77	422.	वसन्त / 235	
394.	बाबा तुलसीदास से / 211	30.8.78	423.	अंधकार / 235	
संभावित रचनाकाल वाली कविताएँ			424.	सुबह और शाम / 236	
395.	चाकर कवि / 219	1951	425.	जब छोटे से जरा बड़ा हुआ / 236	
396.	अमरीकी साम्राज्यवाद का पेट फटेगा / 220	1951	426.	अस्तित्व / 237	
397.	ज्वार और जीवन / 222	1952	427.	शब्द हो गए बागी / 240	
398.	वक्त ऐसा है / 224	1957	428.	असीम सौंदर्य की एक लहर / 240	
399.	प्यार / 224	1957	429.	बस छुए मुझे / 240	
400.	सारथी / 224	1957	430.	मेरा गाँव / 241	
401.	प्रभात / 225	1957	अनूदित कविताएँ		
402.	प्यास और पानी / 225	1961	431.	क्या तुम नभ पर / 246	12.8.56
403.	दर्द के हरे पेड़ में / 226	1968	432.	लड़ा नहीं / 246	12.8.56
404.	अकेला पहाड़ / 227	1968	433.	कर्ण प्रिय कोमल स्वरों के / 246	8.2.57
405.	खबर नदी / 227	1968	434.	कविता की गंभीर पंक्ति / 247	8.2.57
406.	कमल / 227	1971	435.	हाइपीरियन का पहला स्टैंजा / 247	8.2.57
			436.	दिन अँधेरा मेघ झरते / 247	5.11.61



अजेय ही अड़े रहो*

मेरे तन तने रहो
आँधी में-आह में
दृढ़-से-दृढ़ बने रहो
शाप से प्रताड़ित भी
व्यंग्य से विदारित भी
मेरे तन खड़े रहो
आफत में आँच से
अजेय ही अड़े रहो

1-9-1956

दिन बीत गया*

दिन, बीत गया,
अब रीत गया,
जमुना-जल के छलके-छलके
मृग-मारुत के पग से चलके
हलके-हलके बिजना झलके

7-2-1956

चुप*

चुप भी एक पौधा है
पत्थर का बना हुआ
आँसू पर उगा हुआ
दीपक पर खड़ा हुआ
वायु चली, लेकिन वह उड़ा नहीं
टंड पड़ी, लेकिन वह गला नहीं

* शीर्षक संपादक द्वारा

रात हुई, लेकिन वह सोया नहीं
सुबह हुई, लेकिन वह जगा नहीं
बीते दिन, लेकिन वह खोया नहीं
बोलता है, लेकिन इस धीरे से
कि उसको हम सुनते नहीं,
सुनने का प्रयास करें
तब भी सुन सकते नहीं।**

9-3-1957 रात 10 बजे : एक घंटे में

तुम भी कुछ हो*

तुम भी कुछ हो
लेकिन जो हो
वह कलियों में—
रूप-गंध की लगी गाँठ है
जिसे उजाला
धीरे-धीरे खोल रहा है।

25-3-1958

तुम ऐसी ही एक कली हो*

एक कली ऐसी होती है
जो अन्तस को
छू लेती है
स्वयं आप ही,
और गंध से भर देती है
स्वयं आप ही,
चाहे कोई रूप न माँगे—
गंध न माँगे।
तुम ऐसी ही एक कली हो!!

27-3-1958

** केदारजी ने इस कविता को अंग्रेजी में भी लिखने का अधूरा प्रयास किया है।

* शीर्षक संपादक द्वारा

फूल हो तुम*

कामिनी हो
कामिनी का फूल हो तुम
चूमने दो
चूमने का फूल हो तुम

5-6-1958

हे मेरी तुम!

हे मेरी तुम!
बीज (जन्म देने का कारण) कहाँ हमारा?
क्या जानेगा कोई ज्ञाता, पंडित, ज्ञानी!
मैं कहता हूँ;
वह त्रिकाल है, जिसने हमको जन्म दिया है;
और उसी में हम रहते हैं, लय रहते हैं।
जन्म-मरण का कोई कारण और नहीं है ॥

25-3-1958 : रात

आत्मबोध*

मैं लीन राम में राम लीन हूँ, मुझमें
वही ब्रह्म है, मुझमें जो है उनमें ॥

अक्टूबर, 1959 (पत्रिका के रैपर पर लिखी)

मनुष्य*

कहाँ नहीं पराजित हो रहा है मनुष्य
आज की व्यवस्था में संतप्त?
कहाँ नहीं अपराजित होने का प्रयास कर रहा है मनुष्य
आज की व्यवस्था में उद्विग्न?

* शीर्षक संपादक द्वारा

क्रान्ति से दुर्द्धर्ष को निश्चय जीतेगा मनुष्य ।
शान्ति से निश्चय नया निर्माण करेगा मनुष्य
संकट और संताप को अवश्य हरेगा मनुष्य ।

30-9-1960

याद*

जैसे कुछ खोए और खोकर वह मिले नहीं
फिर भी उस खोए की याद बस रहे
वैसे तुम खोर्यो मैं खोया
खोकर फिर मिले नहीं आपस में
याद ही बच रही ।

3-10-1960

दम्भी बादल*

दम्भी बादल
फेंक गया है काली छाया
नहीं दे गया
अपने जल की एक बूँद भी
चला गया है वहाँ बरसने
जहाँ शिलाओं की समाधि है ।

13-10-1960

दिन अच्छा है*

दिन अच्छा है
नटी नदी के दृढ़ नितम्ब की तरह खुला है,
पानी जिसको परस रहा है मधुर चाव से
उस नितम्ब को खुले दिवस को जी भर देखो

दिन अच्छा है
बीच खेत में बड़े साँड़ की तरह खड़ा है

* शीर्षक संपादक द्वारा

गाएँ जिसको निरख रही हैं, मुग्ध भाव से
उस मनचीते वृषभ दिवस को जी भर देखो

9-1-1961

यातना*

भोगने दो मुझे
लय न पा सकी विलाप-व्याकुल
कविता की यातना

भोगने दो मुझे
बलात् प्रताड़ित विकल बेबस
विचार की यातना

भोगने दो मुझे
ओठ में अटकी क्रान्तिकारी
पुकार की यातना

भोगने दो मुझे
अंधकार में जल रही मौन
मशाल की यातना

भोगने दो मुझे
आदमियों के बीच
आदमियों की बनाई हुई यातना

9-1-1961

तप रहा है सूर्य मध्याह्न का*

तप रहा है सूर्य मध्याह्न का
मस्तक पर तुम्हारे,

* शीर्षक सम्पादक द्वारा

आँख से आग
उगलता;
ऐसा है तुम्हारा
प्रकोप

9-1-1961

सुन्दर बनाते हैं दिन को*

सुन्दर बनाते हैं दिन को
जवान नदी के नितम्ब
धूप में खुले पाषाणी
चिकने सुडौल
देखता हूँ जिनको मैं
घंटों सहलाता हूँ
जिनको मैं

9-1-1961

पुनरुद्धार की प्रतीक्षा*

कराल नागफनियों के ऊपर
टँगा है मेरे अन्तराल में आकाश
कठोर-वृहदाकार-काला;
न सुबह है वहाँ न शाम;
न उड़ते हैं जुगनू न पलक झिपकते हैं तरल तारागण
न नाट्य करते हैं केसर रंगों के नट
एक से एक वशीकर प्यारे;
यहाँ नीड़ों में सोये हैं मुक्त-मौक्तिक*
मराल मानसर के
जान लो न तुम मुझे;
मैं हूँ तुम्हारा पड़ोसी
अभाव ग्रस्त

* शीर्षक सपादक द्वारा

सौतेली माँ का बेटा
उपेक्षित
जर्जर परेशान
राष्ट्र की संसद के सामने
दूँठ की तरह खड़ा बेकार
पुनरुद्धार के लिए
प्रतीक्षा में
क्षत-विक्षत

16-1-1961

न जाओ मेरे दोस्त*

न जाओ मेरे दोस्त वहाँ
रस-विहार के लिए
अपराध है जहाँ बजना
हर सितार के लिए।

19-1-1961

सुख*

सुनता हूँ कल सुख आयेगा
मत्त मयूरी नाच करेगा
इन्द्र-धनुष संसार करेगा

25-1-1961

मैं मगन मन....*

एक तारा है गगन में
एक तारा है भवन में
एक तारा है नयन में

* शीर्षक संपादक द्वारा

तीन तारों की लगन में
मैं मगन मन
वारुणी विष पी रहा हूँ
पी रहा हूँ—पी रहा हूँ।

गमगमाती
गीत गाती
मौत की मउहर बजाती
नाचती—पल छिन नचाती
जिन्दगी मैं जी रहा हूँ
जी रहा हूँ—जी रहा हूँ

25-1-1961

पुल छोटे—पहिये खोटे*

ढेर लगा दिये हैं हमने
पुलों के
पहियों के
अपनी सदी के पार जाने को
लेकिन पुल छोटे हैं
सब पहिये खोटे हैं

28-1-1961

खुशी

टप्प से चू पड़ी है खुशी
सीकल^{**} की तरह रसियायी
आओ हम चूसें।

1-2-1961

* शीर्षक संपादक द्वारा

** डाल पर पका आम।

गौरैया और मैं*

मुझसे घबराती है
छोटी गौरैया
क्योंकि मैं
उड़ता नहीं
घटिया हूँ।

4-2-1961

दर्पण*

न देख तू मुझे
मेरी आँखों से घूरकर,
तिरछी भवें ताने;
डरता हूँ मैं तुझसे
ओ मेरे दुश्मन शीशे!

4-2-1961

सागर था वह*

सागर था वह,
आकर मुझमें, चला गया जो
मुझे डुबोकर और
भुलाकर चला गया जो,
फिर न लौट आने के खातिर,
अन्त समय तक टेर-टेरकर मरुथल में ही
रह जाने के खातिर,
फिर न गीत गाने के खातिर

4-2-1961

रोशनी दो रोज*

मौन मिट्टी के दिये में तुम जियो
रोशनी दो रोज आँधियारा पियो।

2-3-1961

* शीर्षक संपादक द्वारा

आग और बर्फ की वसीयत का लेख*

मैं हूँ
अपनी चुक गयी
आयु का दस्तावेज,
आग और बर्फ की वसीयत का लेख
उत्तराधिकारियों के विवाद के लिए

1-4-1961

कुछ ऐसे भी लोग मिले हैं*

कुछ ऐसे भी लोग मिले हैं
मिलकर भी जो नहीं मिले हैं
वह घमंड के टीले पर ही
पारिजात की तरह खिले हैं,
उनको मेरा हाथ जोड़कर नमस्कार है
बड़ी दूर से।

1-4-1961

गंध महकते अंग*

सुन्दर हो
अच्छी हो जैसे
फूल—
गंध महकते अंग
खरा निखरता रंग

8-4-1961

अभी न जाओ*

आयी हो तो आओ
अभी न जाओ

* शीर्षक संपादक द्वारा

ठहरों दर्पण में
समाओ
सर्वांग

30-4-1961

धूप और चाँदनी*

दिन में खिलती है धूप
रात में चाँदनी
प्यार की छाँह में कामिनी
मेघ की बाँह में दामिनी

13-6-1961

दहककर जल चुके हैं*

दहककर जल चुके हैं अंधकार के दिशाओं के किंवाड़े
आँख खोलकर निहारती है नरम पंखुरियों की सुन्दर
सुकुमार सुबह
खेये चली जा रही है नावों का एक बेड़ा
हरे हिंडोले की सरसराती हवा
उतार चुकी है नीले आसमान के जिस्म का
छिलका
और निकल आयी है दमदमाती निरी सफेद धूप
नारियल तोड़कर निकल आयी हो जैसे सफेद गरी-
कान फोड़ कोलाहल करते हैं,
ईर्द-गिर्द के लोग जैसे कनबहरे कठफोड़वा
धान कूटती हैं ओखली में डाले हमें-
छोकरी भावनाओं और विचारों की
हमारी व्यथाएँ
मौत से लड़ते हैं हमारे छंद और गान के
रंग-बिरंगे पखेरू
फिर भी शंख फूँकते हैं हम अपने अटल इरादों के

* शीर्षक संपादक द्वारा

शोक के साथ-साथ हम हर्ष के समाचार
छापते और बाँटते हैं।

16-6-1961

कतर रही है हमको चिंता*

कतर रही है हमको चिंता
कैंची से कपड़ों की तरह
दरोर रही है हमको शोषण की दाढ़
काल के मुँह में खड़ी मूँग की तरह
टपकता ही जाता है हमारा खून
आखिरी यात्रा की सड़क पर
तोड़ता है हथौड़ों से, कोई
हमारे हाथों की मुट्टियाँ
निकाल लेना चाहता है बलात्
हमारी आँखें बटन बनाने के लिए
शोचनीय है हमारी और हमारे देश की
यह दयनीय दशा!

27-6-1961

नहीं तो आया अब तक मेघ*

उतरने को आया अषाढ़
नहीं तो आया अब तक मेघ
नहीं तो आये अभी तक अनमोल बरसते मोती
नहीं तो आयी जाम ढरकाती सुराही
आज भी दिन गया सूखा-सूखा
आसमान को सूखा देखते

30-6-1961

अब आयी चंचला शरण में*

घन-पर-घन आ धिरे गगन में
क्षण-पर-क्षण आ तिरे नयन में

* शीर्षक संपादक द्वारा

श्याम नील हो गया धरातल
रंग रोर भर उमड़ पड़ा जल।

अब झूमें गजराज विजन में
छिपे सूर्य के कदली वन में
अब उतरी आँखों में कजरी
रस बरसी बाँहों में बदरी।

छूटी कटि की कनक मेखला
टूटी पद की लौह शृंखला
अब आयी चंचला शरण में
पाने को आवास चरण में॥

15-7-1961

जीवित चिड़िया सिसक रही है*

अब भी कोई जीवित चिड़िया सिसक रही है
नील गगन के पखनों में
नील सिंधु के पानी में
मैं अब भी उस जीवित चिड़िया की सिसकन से
सिहर रहा हूँ
वह जीवित चिड़िया मनुष्य का अमर हृदय है।

16-7-1961

मैं वह नहीं बजा घंटा हूँ*

देवालय के उस पाषाणी वृषभ-कंठ से
काल बँधा है बधिर अचंचल घंटे जैसा
मैं वह नहीं बजा घंटा हूँ।

16-7-1961

* शीर्षक संपादक द्वारा

दिनकर की किरनों से मारी*

दिनकर की किरनों से मारी
एक नदी पत्थर के ऊपर तड़प रही है
जैसे घन से छूटी बिजली
नीलम नभ में तड़प रही है

16-7-1961

सपना और अपना*

नहीं मिले जो, वह सपना है
गले मिले जो, वह अपना है

16-7-1961

हवा*

एक

हवा पहाड़ी झरने की झनकार हो गयी
जिस तक पहुँची उसको वह स्वीकार हो गयी

दे

हवा कठिन सरकार हो गयी
चल न सकी वह, भार हो गयी

16-7-1961

नदी-धूप से मिलने*

मैं जा रहा हूँ अपनी नदी से मिलने
सीढ़ियों से उतर गयी नीचे
भूमि पर लेटी धूप से मिलने

30-7-1961

* शीर्षक संपादक द्वारा

जवान दिन*

दायें-बायें
सुबह-शाम : इन
कामरूप दो सुंदरियों के बीच
जवान दिन हैरान
युगों से
भरी दुपहरी में तपता है।

1-8-1961

अंधकार*

तोड़कर सोने का बड़ा अंडा,
निकल आया है
अब सघन
अंधकार का पखेरू
पाँख खोले।

7-8-1961

स्वार्थ और स्नेह*

स्वार्थ के श्रृंगार का संसार सुविधा से सुखी है
स्नेह के श्रृंगार का संसार दुनिया से दुखी है
स्वार्थ के श्रृंगार की छवि लाभ लोभी आसुरी है,
स्नेह के श्रृंगार की छवि त्याग तोषी माधुरी है,
स्वार्थ ने सोना कमाया, गेह भी अपना बनाया
स्नेह ने सोना गँवाया, गेह भी अपना गँवाया।

7-8-1961

क्या हो गया है हमें?*

क्या हो गया है हमें?
कि हम हैं खड़े मील के गड़े पत्थर की तरह

* शीर्षक संपादक द्वारा

नापते हुए सदा, एक से दूसरे की दूरी
खंडित हुए माथे पर खुदाए मजबूरी?
कोई है कुछ और कोई है कुछ
किन्तु अपने न कुछ होने का इश्तहार
हम खुद कर रहे हैं बार-बार।

8-8-1961

हार्ट फेल हो गया है पावर हाउस का*

हार्ट फेल हो गया है, पावर हाउस का
मर गयी मशीन के साथ मर गयी है बिजली
नगर हो गया है बुझ गए बल्बों की समाधि
मिट गयी है प्रकाश की वंशावली
प्रसार पा गया है निरंकुश अंधकार
अद्वैत का हो गया है एकाधिकार

10-8-1961

अडिग रहा हूँ—अडिग रहूँगा*

यह जो मैं हूँ देवदार की नव तरुणाई
नील रहस्यों तक जाने की दृढ़ ऊँचाई
चट्टानों में जड़ें गाड़कर मैंने पाई
जहाँ नहीं जी पाया कोई वहीं जिऊँगा,
अडिग रहा हूँ—अडिग रहूँगा—नहीं गिरूँगा;
लौट गयी हर आँधी जो आकर टकराई।

15-9-1961

अफसर*

जब मैंने आइसक्रीम होटल में खाकर भी
दाम नहीं दिए और घर चला गया

* शीर्षक संपादक द्वारा

तब मैं एक सबसे बड़ा अफसर था
मुफ्त माल खाने का आदी था।

23-9-1961

गाँधीजी के जन्म-दिवस पर*

आज तुम्हारा जन्म हुआ था इसी देश में,
राष्ट्रपिता होने के पहले कठिन क्लेश में
तब यह भारत सिंह-दंत-नख से शासित था
परदेसी पामर प्रमाद से परितापित था
तुमने देखा नय के ऊपर अनय विराजा
दहन-दमन का बजा रहा था दुर्मद बाजा
जन-प्रतिजन आकुल रोता था दलित दीन था
रूप-राग-जीवन मृणाल हो गया क्षीण था
सह न सके तुम असहनीय दुख-दव का दंशन
दिन प्रतिदिन का क्षण-प्रतिक्षण का कर्षण-घर्षण
तभी सत्य के परम अहिंसक तुम अवतारी
असहयोग ले बढ़े, प्रवंचक सत्ता हारी
शान्ति हुई सम्पन्न, क्रान्तियाँ जहाँ न जीतीं
हुआ नया भिनसार-अमा की घड़ियाँ बीतीं
देश हुआ इस जन्म-दिवस पर अब फिर प्रमुदित
नहीं हरा सकता है कोई-हम हैं अविजित

26-9-1961, रात : 9 से 12
(गाँधी जन्म-दिवस के लिए लिखा)

एक चिड़िया उड़ गयी है*

एक चिड़िया उड़ गयी है,
एक बैठी रह गयी है
धार करुणा की उमड़कर
इस विजन में बह गयी है।

3-10-1961

* शीर्षक संपादक द्वारा

दूब*

हरी दूब के ऊपर कोई
साँप रात भर लोटा;
दबती रही,
मगर दबकर भी—
उठ भिंसारे
नये बाल-रवि का मुँह देखा।

6-10-1961

पुंज पुंज संजीवन बरसे*

घनन घनन सावन घन बरसे
जड़ में ज्ञान
गान चेतन में
तन में प्राण-प्रलोभन बरसे।

ताप हताहत, दाप दमनकर
चाप-चढ़ा-संताप शमन कर
भूमि भामिनी के श्लथ तन पर
पुंज पुंज संजीवन बरसे।

1-11-96

वरद वीणा हुई दीना*

करण का रण खण का रण
मरण का रण लड़े क्षण क्षण
हटे हठ से नहीं ठिठके
कहीं ठहरे नहीं बिक के
गले मिलते रहे गल के
शरण सम्बल रहे बल के

* शीर्षक संपादक द्वारा

रची रचना रुचिर वचना
नलिन नयना विशद वसना
गये तुम कर गये सूना
भुवन भव है विरस ऊना
'समासीना' वह प्रवीणा
वरद वीणा हुई दीना
बचे घन के बँधे परिकर
तरल तम के रूँधे पुष्कर ॥
वयन विदलित भारती है,
नयन विगलित भारती है ॥
फिर उदय हो सदय दिनकर
किरण चुम्बन करे जी भर
जलज जागें, विमुख मुख पर
बहे 'परिमल', गहें सुख स्वर ।

10-11-1961

चित के चित्र....*

काँटे हटे, कटे तम टाँके
धन के सूर्य पूर्व से झाँके
पाके वर्ण बने बन बाँके
चित के चित्र चरित ने आँके

11-11-1961

क्या यह भूतल मौन रहेगा*

क्या यह भूतल मौन रहेगा
क्या यह अपनी कथा व्यथा भी
नहीं कहेगा

क्या यह सागर मौन रहेगा

* शीर्षक संपादक द्वारा

जल अथाह क्या आह-दाह अब
और सहेगा

क्या यह बादल
इन साँसों से नहीं
बहेगा

13-11-1961

वह इस युग का....*

जीकर भी जो जिये नहीं
वह नर है,
मरकर भी जो डरे नहीं
वह डर है,
बनकर भी जो बने नहीं
वह घर है,
खुलकर भी जो खुले नहीं
वह स्वर है,
वह इस युग का; कर-बल-छल का
वर का।

15-11-1961

स्वर्ण के शतदल कलश*

गल गयी है भयावनी भीमामूर्ति
असित रात की
स्वराट सूर्य के प्राथमिक प्रकाश
को झूकर
प्रारम्भ हो गया है स्वस्तिवाचन
सरल संगीत का
सुख ने रच लिये हैं
सरवर सलिल पर
स्वर्ण के शतदल कलश

25-12-1961

* शीर्षक संपादक द्वारा

गाये चली जा रही है....*

स्विच 'आन' है रेडियो का
पनवाड़ी की दुकान में
गाये चली जा रही है कोई कमीन
तवायफ,
मुझे हो रहा है कुछ ऐसा प्रतीत
बम्बई से ही चला आ रहा है
नितान्त नंगी जंघाओं का सरित-संगीत
न जाने अब कब
होगा बन्द
यह अश्लील व्यभिचार
दूर से भी बहुत दूर है यहाँ से
पुलिस की चौकी।

25-12-1961

मुझे बनाये सपना*

लहर नील-नभ-वसना,
क्षीरोदक-वर-वसना
छन्द-ताल गति गमना
नृत्य निरत रह अपना
मुझे बनाये सपना।

1-1-1962

हरिण हेम के*

हरिण हेम के
प्रणय-प्रेम के
शुभ हो युग को
क्षमा-क्षेम से।

1-1-1962

* शीर्षक संपादक द्वारा

विरज में रोए*

भूल गया दुख-द्वन्द्व किनारा
जब पाया सामीप्य तुम्हारा
रज में रहे विरज में रोये।

12-1-1962

जहाँ गिरा वह सूर्य*

जहाँ निराला मरे
वहाँ अब मरे न कोई
जहाँ गिरा वह सूर्य
वहाँ अब गिरे न कोई

नव वसंत में
इस युग के इस अमर-प्राण का
युग वन्दन हो
सुभग सुमन से अभिनन्दन हो।

वह था साधक
बहुत लोग थे उसके बाधक
फिर भी जिसने ऐंड़ लगायी
मिट्टी खायी

नव वसंत में
इस युग के इस प्रवर प्राण का
आराधन हो
वर्ण-वर्ण से अभिवादन हो।

12-2-1962

* शीर्षक संपादक द्वारा

केन*

जो विद्युत की द्युति कटाक्ष है
जो नग नागों की कृपाण है
वही केन है
इस प्रदेश के
जीर्ण जनों की जीवित धारा
बहती है जैसे मद बहता
गंडस्थल से गज के;
ध्वनि का धैवत
जैसे बहता धृति से निर्गत;
हार हारती, वह न हारती।

12-2-1962

मौन का वैराग्य पिघला*

मौन का वैराग्य पिघला
राग के रथ पर चढ़ा हिमवान जागा
सूर्य के सम्राट ने दिक् विजय कर ली
वायु ने वन-वासना के फूल खोले
आस्था की धूप नाची
चेतना की चातुरी के वृक्ष झूमे।
मोद के गायक पखेरू गुनगुनाये
सृष्टि को सीमांत तक
शृंगार ने शोभित किया

16-3-1962

(इलाहाबाद से बाँदा की यात्रा में)

* शीर्षक संपादक द्वारा

अकाट्य है....*

अकाट्य है :
जन्म पाकर जिये जाने का यह तर्क :
पहाड़ पर
शिलान्त तक जड़ें गाड़कर
वनस्पतियों के हरियाने का यह तर्क

20-3-1962

सारथी हूँ सर्जना का*

मैं कसा हूँ कुश-कसन से
डाह-डह से
मैं डसा हूँ
मैं ग्रही हूँ वंचना का
सारथी हूँ सर्जना का

18-7-1962

वे*

हमने गाए गान मही के
मन के गाए छन्द
महाकाल से वे टकराये
नहीं हुए निस्पन्द
वही बने दिशि-दिशि के गायन
अन्तहीन आनन्द
वही बने प्रमुदित फूलों के अंगों का
मकरन्द।

30-7-1962

सुभटकाय मेघों का संघट*

सुभटकाय मेघों का संघट
कर-निकाय-रवि का निगरण कर

* शीर्षक संपादक द्वारा

जल बल की जय के कोलाहल से दिगंत भर
नीलकाय नभ के मण्डल से
भूमण्डल पर उतरा;
तरल काय रवि की तनया के तनुल तोय में
बिम्बकाय हो पुलकलाय कंजन-सा विचरा।

3-8-1962

हँस रहा है उधर*

हँस रहा है उधर
धूप में खड़ा पूरा पहाड़
खोलकर मोटे-बड़े ओठ
और चट्टानी जबड़े।

रो रहा है इधर
शोक में पड़ा जन-समुदाय
काटकर कामकाजी हाथ
तोड़कर छाती तगड़ी।

10-9-1962

ऊँघती है आग*

मैं
को
खा रहा है
मैं
अधमरा आदमी
गा रहा है;
भैरवी,
विहाग,

* शीर्षक संपादक द्वारा

देसराग !
ऊँघती है आग

10-11-1962

अपना सपना धूल बनाकर*

वह
समाज में न्याय न पाकर,
अन्याओं की
चोट दबाकर,
भरी देह का नेह सुखाकर
खाकर ठोकर,
रोम दुखाकर
अपना
सपना
धूल बनाकर,
हाथ-पाँव मजबूत बनाकर
कर से कर
पर की मजदूरी,
पग से हर
क्षण-क्षण की दूरी
जीवन जीती है
अनचाहा
दुःख के सागर में
अनथाहा।

5-4-1963

न हट सका*

न हट सका
बीच में खड़ा समय

* शीर्षक संपादक द्वारा

न मिल सके हम-तुम
समय से बाहर
एक दूसरे में समाये

3-2-1964

(कुछ अन्तर से साथ यह कविता 14.10.1965 को पुनः लिखी गई)

धूप हो या धुआँ*

धूप हो या धुआँ
जीने को जीवन है एक खाई
मरने को जीवन है
एक कुआँ

5-3-1964

नहीं सुनता आदमी*

नहीं सुनता आदमी
दिन में आदमी की बातें
रात में सुनते हैं मुरदे
मुरदों की बातें।

7-11-1964

आए और चले गए*

आए
और चले गये
सुखशायी दिन
छूकर मुझे
देकर दुखदायी
अँधकार
भरमार

18-11-1964

* शीर्षक संपादक द्वारा

छूँछे घड़े*

छूँछे घड़े
बाट के टूटे
ऊँचे नहीं—
पड़े हैं नीचे
कभी जिन्होंने
पौधे सींचे

अब
मनचीते
हाथ गहे के
वे दिन बीते
अंक लगे के
शीस चढ़े के
सपने रीते

6-3-1965

विकल वामा*

तरुण मरकत-मुदित तन से
गये गहने उतर तरु के
कनक वन की सुरति-श्यामा
हुयी म्लाना विकल वामा

14-3-1965

अपना-अपना क्षितिज*

सब जी रहे हैं
अपने-अपने कंधे पर
अपना-अपना क्षितिज लिये
सुबह का और

* शीर्षक संपादक द्वारा

शाम का और
दुपहर का और
रात का और

हरेक का क्षितिज
उसका क्षितिज है
उसका नाम और पता
उस पर लिखा है

यथार्थ और आदर्श के ये क्षितिज
जन्म और मरण के ये क्षितिज
आदमी के सत्य
और सनातन के क्षितिज हैं

मैं भी जी रहा हूँ
आदमी के सत्य और सनातन में
अपना क्षितिज लिए
मेरा नाम और पता
उस पर लिखा है

10-8-1965, रात

तुम्हारी आवाज*

मुझे बाँधकर ले आयी है
तुम्हारी आवाज
नदी किनारे यहाँ
कोई नहीं टिकता जहाँ
नाव पर चढ़कर
सब चले जाते हैं अपने घर,
मुक्त आकाश को
पानी में थरथराता छोड़कर पीछे—
अकेला,

* शीर्षक संपादक द्वारा

बीहड़ रात—
जहाँ सबको ढँक लेती है।

अब मौन हूँ मैं
नदी चुप है
रात चुप है
न तुम
न तुम्हारी आवाज
कुछ नहीं है

19-8-1965, रात

ताव खाया सूरज*

दिन का घोड़ा
बिना घुड़सवार के खड़ा है
आदमी गिर पड़ा है
ऐसा देखकर
ताव खाया सूरज
हँस पड़ा है।

28-8-1965, रात : 1 बजे

मटर का एक दाना और मैं*

मेरे सामने पड़ा है
मेरे आँगन में
मटर का एक दाना

मुझसे दूर—
कुछ फासले पर
उसका अस्तित्व है

* शीर्षक संपादक द्वारा

मेरा अस्तित्व
उससे दूर—
कुछ फासले पर
मेरे समीप है

उसका बोध
और अपना बोध
मुझे एक साथ हो रहा है

इसी से
वह मटर
मेरे बोध में
मेरी मटर है
और मैं
उस मटर का हूँ

यथार्थ का
और 'इस बोध' का सम्मिलन
सृष्टि के अनन्त अस्तित्व का प्रमाण है

वह रहे न रहे
मैं रहूँ न रहूँ
रहना भी एक अस्तित्व है
न रहना भी एक अस्तित्व है
अनस्तित्व असम्भव है—
न मेरा—न मटर का
न और किसी का

13-9-1965, रात : 10 बजे

न जीना न मरना*

न जीना
न मरना

* शीर्षक संपादक द्वारा

फटे वस्त्र को बार-बार सीना
हरे पेड़ से पत्तियों का गिरना

न यहाँ—
न वहाँ
न भीतर—
न बाहर
एक ही चिलम से धुआँ पीना
पैर से नहीं
पेट के बल फिरना

सच है अंधा
झूठ है बहरा
इन्हीं दोनों का है पहरा
जगह-जगह गहरा

13-9-1965, रात : 12 बजे

मेरा आधार खम्भ*

मेरा आधार खम्भ
जमीन में गड़ा है
सिर उठाये
ऊपर, खड़ा है

मेरे हाथ
उसके अस्तित्व से निकले
दिशाओं में काम कर रहे हैं
इस समय
यथार्थ की गाँठ खोल रहे हैं

मैं हूँ

* शीर्षक संपादक द्वारा

नवीन के निर्माण में लीन
जमीन मेरी है
आकाश मेरा है
मेरा आधार खम्भ
मेरा, पुरुष है

14-9-1965, दिन : 10 बजे

धूप में कहीं खो गया है मनुष्य*

धूप में कहीं खो गया है मनुष्य
उसको तलाश कर रही है
उसकी पीढ़ी,
व्यर्थ बदनाम हो गया है
अंधकार ।

14-9-1965

मेरा नाम कल....*

मेरा अनुज
मुझसे बड़ा है
मेरे ऊपर
वह खड़ा है
जमीन में
नीचे
मैं पड़ा हूँ

मेरा नाम-कल
(जो बीत गया)
उसका नाम
-आज
जो है ।

14-9-1965, रात : 10 बजे

* शीर्षक संपादक द्वारा

बड़ा कठिन है*

बड़ा कठिन है
सत्य का मुँह देख पाना
न्याय के लिए
असत्य को बेध पाना

संशयी मन
सत्य की आवाज नहीं सुनता
कान का परदा
न्याय के लिए नहीं खुलता

15-9-1965, रात : 8 बजे

सत्य और असत्य*

सत्य और असत्य
अखबार में
दोनों छपते हैं
एक साथ
जीवन की माला दोनों जपते हैं ।
पाठकों को दोनों प्रिय लगते हैं
लेकिन जब दोनों लड़ पड़ते हैं
दोनों बुरे लगते हैं
दिल और दिमाग को ।

15-9-1965, रात : 11 बजे

सत्य का कत्ल हुआ*

सरेआम
सत्य का कत्ल हुआ
मक्कार मकड़ी, तुरन्त,
सिर से पैर तक जाला बुन गयी

* शीर्षक संपादक द्वारा

कडुआ धुआँ बंदी हुआ
केस चला
राह ने गवाही न दी
धूप ने कुछ न कहा
धरती आयी।
मिट्टी बोली :
शव ने स्वयं कहा :
लकवा मार गया।
न्यायी संशय
भ्रमवश बोला :
कैदी छूट गया।

15-9-1965, रात : 9 बजे

संकट की राजनीति*

संकट की राजनीति गहरी है
आदमी से
नाव बन गया हूँ मैं
न डूबने के लिये
अंधकार अच्छा है
प्रकाश से
आदमी को खतरा है
अब निर्दीप हो गया हूँ मैं
न मरने के लिए
एक-के-बाद-एक
परेशानियों के दिन
ताँता लगाए
मेरे पास आ गए खड़े हैं
मुझे परास्त करने के लिए

17-9-1965, शाम : 6 बजे

* शीर्षक संपादक द्वारा

मैंने तन दे दिया है*

मैंने तन दे दिया है
परेशानियों को
चिचोरने के लिये
मन दे दिया है मैंने
बंदूक मारने वाले
जवानों को
दूने मन से
देश की लड़ाई लड़ने के लिये
शत्रु को परास्त करने के लिये
कमजोर हो जायगा
तन तो क्या
मन तो अजय हो जायगा
इस लड़ाई में
भविष्य के लिये
स्वाभिमान से
नई जिन्दगी जीने के लिए
नाव से आदमी बन जाने के लिए
प्रकाश से
अंधकार भगाने के लिए
देह में दीपक जलाने के लिए
नेह में फूल खिलाने के लिए
संकट और अंधकार
एक साथ आये हैं
कुछ दिन में
एक साथ जाएँगे
भारत को छोड़
कहीं और विलय जाएँगे**

18-9-1965, शाम : साढ़े 5 बजे

* शीर्षक संपादक द्वारा

** यह कविता दो दिनों में पूरी हुई। (सं.)

जीता जीवन-हारी मौत*

अब एक हो गया है
बूँदों में बिखरा हुआ भारत

बल का सागर
अब प्रबल हो गया है

खुल गयी हैं तहें
खुलती जा रही हैं राहें
एक-के-बाद एक;
जय का ज्वार
आ गया है पानी में

मौत की आ गयी है मौत
जीवन का साथ दे रहा है शौर्य
जीता जीवन
हारी मौत

18-9-1965, रात : 9 बजे

वह जो 'है' और 'नहीं' है*

वह जो 'है'
और 'नहीं है'
इनके बीच में रेखा नहीं है

वह जो 'है' को देखते हैं
'नहीं है' को नहीं देखते हैं
वह जो 'नहीं है' को देखते हैं
'है' को नहीं देखते हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

कुछ हैं जो दोनों को देखते हैं
सृष्टि का रहस्य
वही भेदते हैं

दिक् और काल
इसीलिये हैं
कि 'है' और 'नहीं है'
दोनों वहाँ हैं

18-9-1965, रात : 10 बजे

नगर निकल आया है सड़कों पर*

घरों से बाहर
नगर निकल आया है सड़कों पर

अब दिखायी दिये हैं
सहस्रों की संख्या में उसके पैर
एक साथ चलते हुए
एकता के दृढ़ स्तम्भ जैसे
एक साथ बढ़ते हुए
कई हजार हैं इसके सिर
इन सिरों के समूह का एक संसार है
इस संसार का एक संघ है
राष्ट्रसंघ की तरह
इसे देखकर
मेरा सिर ऊँचा हो गया है

इस नगर के हाथ
जय के हाथ हैं
जय के हाथों का यह वन
कीर्ति और कला की क्रीड़ा का वन है।
यही हाथ देश के हाथ हैं !

* शीर्षक संपादक द्वारा

कुछेक यहाँ हैं
बहुत से मोरचे पर लड़ रहे हैं
शान्ति और सुरक्षा के लिये
वही हाथ बहादुर हाथ हैं
इस नगर के हाथ उनके साथ हैं ।

यह नगर
सच्ची सहानुभूति से
आभार प्रकट कर रहा है
जवानों के प्रति,
उनके शौर्य की प्रशंसा कर रहा है
उनके साथ
जीने-मरने की प्रतिज्ञा कर रहा है ।

आज का जुलूस
अखण्ड एकता का
जुलूस है ।

23-9-1965, रात : 10 बजे

उस दृष्टि ने मुझे उठा लिया*

उसने मुझे कुछ नहीं दिया
सिवाय उस दृष्टि के
जो किसी को नहीं मिली
मुझे मिली ।
मैं कृतार्थ हो गया ।
उस दृष्टि में वह मुझे मिली
और कहीं नहीं मिली ।

शायद ही
कोई किसी को उस दृष्टि से देखता है

* शीर्षक संपादक द्वारा

जिस दृष्टि से उसने मुझे देखा
और देखकर चली गयी
(फिर) वापस न आने के लिए
मुझे भूल जाने के लिए

वह नहीं जानती
वह क्या कर गई
मुझे देखकर
कितना कल्याण कर गई

गिर गया था मैं
उस दृष्टि ने मुझे उठा लिया
मौत से बचा लिया।

24-9-1965, रात : 11 बजे

भविष्य की पुकार*

जहाँ कहीं
अप्रकाशित अंधकार है
वहाँ जाना होगा
मनुष्य के
डूब गये सूर्य को उगाना होगा
दिन की नदियाँ
स्वेद से बहाना होगा
यही आज की
भविष्य की पुकार है

24-9-1965, रात : 12 बजे

यह लड़की*

यह लड़की
जिसका बाप मर गया है

* शीर्षक संपादक द्वारा

और माँ ने दूसरा खसम कर लिया है
जमीन की लड़की है
आसमान
इसका बाप है
वायु इसका भाई है
धूप इसकी बहन
और रात इसकी सखी है
इसकी उम्र
अब नदी की उम्र है
पहाड़ काटकर बहना
इसका स्वभाव है

यह लड़की
गरीब की लड़की है
सारे देश की लड़की है
इसका जीवन
देश का जीवन है
इसकी रक्षा
देश की रक्षा है

24-9-1965, रात 11.30 बजे

कायरोँ का नहीं वीरोँ का भारत*

लड़ाई बंद हो गयी है
युद्ध का एक अध्याय
समाप्त हो गया है
जवान रुक गये हैं
जहाँ थे वहाँ विराम लग गये हैं
मैदान छोड़कर भाग गए हैं

प्रधानमंत्री का आदेश
—समर्पण का नहीं—

* शीर्षक संपादक द्वारा

सम्पूर्ण सम्मान के साथ
शक्ति और शील का आदेश है
वह आदेश
जवानों की जय का आदेश है
नय और विनय का वह आदेश
स्वदेश के नय और विनय का आदेश है
युद्ध के सैनिक
अब शान्ति के सजग प्रहरी हैं
जो जहाँ है

25-9-1965, दिन : 9.30 बजे

अदम्य उत्साह*

और साहस से वहाँ खड़े हैं
तब तक न हटने के लिए
जब तक आतंक पलायन न कर जाय
और सुबह की धूप
फिर न हँसने लग जाय
घायल दिन
स्वस्थ और चंगा न हो जाय
सीमा का अतिक्रमण
असम्भव न हो जाय ।
कायरों का नहीं-वीरों का भारत
शान्ति का सशक्त मोरचा बन गया है
गरुणगामी वायुयानों का
दिग्गज टैंकों का
आग उगलती बंदूकों का
अमोघ शस्त्रास्त्रों का ।
यह मोरचा भी
शत्रु की मृत्यु का मोरचा है
अखण्ड भारत के
अखण्ड विश्वास का मोरचा है ।

* शीर्षक संपादक द्वारा

न टूटने वाला यह मोरचा
शान्ति के पर्व का
रक्त और हृदय के कमल का
भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड का,
जय और विजय का
अनुपम मोरचा है।

25-9-1965, शाम : 5 बजे

स्थितप्रज्ञ अपना देश*

युद्ध-विराम के बाद भी
अविराम
आक्रमण कर रहा है
पाकिस्तान
मान कर भी
नहीं मान रहा
राष्ट्र-संघ का आदेश
अब भी कर रहा है वार
दुर्निवार,
धुआँधार
हत्या का प्रसार
अनवरत संहार
भारतीय सीमा को
कर रहा है पार।

कहीं करता है
आसमानी उल्कापात
कहीं करता है विस्फोटक आघात
कहीं करता है
अबोध नगरों का विध्वंस
कहीं करता है
गरीब गाँवों का आहार

* शीर्षक संपादक द्वारा

पाकिस्तान ने
छोड़ दी है पढ़ना कुरान
नमाजी नहीं रह गया
उसका ईमान
उस पर सवार है
कोई शैतान
वह हो गया है
सरकार की शक्ल में हैवान

मर रहे हैं उसके मारे
गिरजा और अस्पताल
जालिम कारनामों का
बिछ गया है जाल

इतना सब हुआ
और हो रहा है
इस पर भी
अपना धैर्य भारत नहीं खो रहा है
स्थितप्रज्ञ अपना देश
सहता है कदाचार
इस पर भी
करता नहीं अनाचार

कर सकता है
उस पर
पुनर्वार वह उस पर बज्र-प्रहार
ले सकता है बदला बल से
दे सकता है हार
किन्तु उसे रोके हैं उसके
जीवन के संस्कार
शान्ति शील के सत्य विचार

जब आयेगा समय
और अवसर आएगा
बिना किये आक्रमण
न भारत बच पाएगा
तब वह युद्ध करेगा
बल का बदला बल से लेगा
युद्ध-विराम तोड़कर-
आगे उमड़ पड़ेगा
जहाँ धरेंगे चरण
समर-सैनिक-सेनानी
झंडा वहाँ गड़ेगा
हारेगा दल-बादल-पाकिस्तानी
जय का वरण करेगा भारतज्ञानी

29-9-1965, रात : 9 बजे

मरा हुआ पानी*

ऐसी भी
अनुभूति हुई है कभी
मरा हुआ पानी
खिंची हुई खाल-सा पड़ा रहा
न प्रकाश ने उसे जिलाया
न वायु ने उसे हिलाया
न ताप ने तपाया
न आग ने जलाया
वह पानी
बेमानी
वह खाल
बेमिसाल
मैं देखता रहा चकराया
मौन के बोध में गहराया

* शीर्षक संपादक द्वारा

मैंने कहा : वह बोले
पानी हो या खाल रहस्य खोले
लेकिन अवचन रहस्य अवचन रहा
दिवंगत पानी का दिवंगत प्रवचन रहा

27-9-1965, रात : 10 बजे

खोखले आदमी*

कम नहीं
बहुत हैं
खोखले आदमी
यहाँ,
वहाँ
घूमते हुए
इस
उस
के
पैर चूमते हुए
दया और दुआ
इस
उस
की
माँगते हुए
जिये बिना
जिए हुए
और मरे बिना मरे हुए
खाल की खोली में
खाली समय
भरे हुए।

29-9-1965, रात : 10 बजे

* शीर्षक संपादक द्वारा

नदी में डूबा मैं*

नदी में डूबा मैं
नदी पीता हूँ
अपने अस्तित्व में
प्रकृति का अस्तित्व जीता हूँ

30-9-1965, रात : 10 बजे

यह हमारा देश भारत*

यह हमारा देश भारत
हम ममाखियों के शहद के छत्ते का देश है

लगन से
लव से
हम ममाखियों ने इस मधु-कोष को बनाया है
हम ममाखियों के इस कोष में
फौलाद के फूलों से निकाला हुआ मधु भरा है
वह फूल आग के वृन्त पर
कारखानों में हमने खिलाये हैं
जो न मुरझें हैं—
न मुरझायेंगे।

मोम का नहीं—
यह हम ममाखियों के मनोबल का छत्ता
राष्ट्र के न टूटने वाले प्रान्तों का छत्ता है

अखण्ड एकता का यह छत्ता
हम ममाखियों की सत्ता का छत्ता है।

हमारी सत्ता अजेय है
हमारा छत्ता

* शीर्षक संपादक द्वारा

यह हमारा देश—
हमारी सत्ता से भी अधिक अजेय है

इसका शहद
हम ममाखियों के लिए है
यह हमारा शहद है
इस शहद को
न कोई और निकाल सकता है
न कोई और चुरा सकता है—
सिवाय हमारे
कोई दूसरा और
इस शहद का अधिकारी नहीं है

4-5-1965, रात-दिन

केन में और तुम*

सुबह में डूबी मुसकान
मुसकान में डूबी केन
केन में डूबा मैं
मुझमें डूबा सौन्दर्य
सौन्दर्य में डूबी तुम
तुम में डूबा दिग्देश
आदि से अन्त तक
यही है परिवेश

5-10-1965, रात : 10 बजे

जबानबंदी का शाहंशाही एलान*

जबानबंदी का शाहंशाही एलान
खुदगर्ज शैतान ने
जनाब इंसान को दिया
इसलिए दिया

* शीर्षक संपादक द्वारा

न तकरीर की चले आँधी
न जुल्म का बुझे दिया

6-10-1965

कुँवारी*

वह कुँवारी है
चाहे पति न मिला हो
चाहे किसी से यारी हो।

6-10-1965

दौलत*

दौलत
उस अमीर से मिली है
जिसका इंसान नकली
और ईमान छली है

6-10-1965

गरीबी*

लघुत्तम है उसका नाम
महत्तम है उसकी गरीबी
शाम की लम्बी छायाओं के समान
जो उसके चलने से
जमीन पर पड़ती है

उसका पुल टूट गया है
इस पार
बचपन है
उस पार
यौवन

* शीर्षक संपादक द्वारा

बीच में
नदी है
पाँव पकड़कर
गड़प जाने वाली

6-10-1965, रात : 8.15 बजे

हमको है जीने का दम*

आप दुःखी हैं
मेरे मन की नदी में नहाकर
और मैं
सुखी हूँ
आपके कैक्टस को
दिल से लगाकर।
क्या खूब हैं आप और हम
आपको है गम
हमको है जीने का दम

11-10-1965, रात : 10 बजे

समय का संविधान*

वृत्त पर वृत्त
खींचता चला जा रहा है मनुष्य
और फँसता चला जा रहा है वह
सीधी लकीर की खोज में
समय का संविधान
कोई रास्ता नहीं देता
ज्यामितिक हो गया है मनुष्य
वृत्त में जीने के लिए
और वृत्त में मरने के लिए
सीधी लकीर में चलने के लिए

13-10-1965, रात : 7 बजे

* शीर्षक संपादक द्वारा

माँगने से नहीं मिलती शान्ति*

माँगने से
नहीं मिलती शान्ति
न खरीदने से मिलती है
पुरुषार्थ से
मृत्यु के हाथ से मिलती है
राष्ट्र के नय से मिलती है
जय के बाद
निर्विवाद

13-10-1965, सायं 7.30 बजे

कविता में पत्र डॉ० शर्मा को**

बाँदा
13.10.65
प्रिय डाक्टर !
पाई चिट्ठी
हुआ प्रसन्न
तुमने तोड़ा मौन
मैंने खायी खीर
स्वाद बन गया
वक्ष तन गया
गया इलाहाबाद
पुस्तक देखी
आँखें चमकीं
बहुत समय पर
मेरी कविता बाहर आई
छपने पर वह और हो गयी
सबको भायी
समारोह भी रहा सुहाना
सबने मुझको

* शीर्षक संपादक द्वारा

** रामविलास शर्मा। कविता में आए संदर्भ 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' के प्रकाशनोत्सव के हैं

मैंने सबको जाना
मन गाता था गाना
मैं पहने था माला
चलता था चौताला
लेख पढ़े लोगों ने डटकर
सबने काव्य सराहा
पंत, महादेवी के भाषण भाव भरे थे
हास हुलास भरे थे
अमरित* ने अमरित बरसाया—
अब फिर बाँदा—वही कचहरी
वही वकालत—वही कटाकट
शेष कुशल है
मैं केदार तुम्हारा।

13-10-1965, बाँदा, रात : 11 बजे

साधारण मनुष्य*

जिसका कोई समाचार नहीं है
किसी अखबार में
मैं वही साधारण मनुष्य हूँ
अनाम मर गया मैं
वृहत् संसार में
समय के चक्र से
कटकर
जब तक जिया
प्रताड़ित जिया मैं
जब मरा
फिर न जन्मने के लिए मरा मैं

14-10-1965, शाम : 6 बजे

** अमृत राय।

* शीर्षक संपादक द्वारा

न हट सका*

न हट सका
हमारे बीच में खड़ा समय
कि हम मिल सकें
दिक् से बाहर
एक हो सकें
काल से दूर

14-10-1965, शाम : 6.30 बजे

कृपणता*

कृपण है तुम्हारी
अनन्त उदारता
अकृपण सौन्दर्य की झलक
देने में

14-10-1965, शाम : 6.30 बजे

पुल टूट गया है*

पुल टूट गया है
मेरी पुकारों का
इस पार से उस पार जाने का
तुमसे मिल पाने का

14-10-1965, शाम : 6.30 बजे

हम सींचते हैं आग के खेत*

हम सींचते हैं आग के खेत
आँखों के पानी से
और उठ रहे धुएँ में

14-10-1965, रात : 10 बजे

* शीर्षक संपादक द्वारा

कोयले का ब्याह चीनी से*

कोयले का ब्याह हुआ चीनी से
समाचार दिल्ली से आया है

14-10-1965, रात : 10 बजे

इश्तहार*

इश्तहार के इस नये युग में
अखबार में छपकर जीना पड़ता है
चाहे शास्त्रीजी हों
चाहे जनरल चौधरी
चाहे रक्षामंत्री चह्माण

17-10-1965

फासला*

इस लैम्प पोस्ट से
उस लैम्प पोस्ट का फासला
इतना अधिक नहीं है
जितना अधिक फासला
आदमी का दूसरे आदमी से है,

17-10-1965

आदमी मजबूर है बिकने के लिए*

चाहे कम में बिके
या अधिक में
आदमी मजबूर है बिकने के लिए
न बिकना मौत है—
बिकना जीवन

17-10-1965

* शीर्षक संपादक द्वारा

हमारा संकल्प*

हमारा संकल्प
जो हमने आज लिया है
हमको हमारे देश ने दिया है
जैसे मेघ ने जल दिया है
पेड़ ने फल दिया है
संकल्प का यह जल
हमारा जीवन है
हम यह जीवन
स्वदेश के लिए जिएँगे

संकल्प का यह फल
हमारा मनोबल है
हम इस बल से
स्वदेश के लिए जिएँगे।

20-10-1965

उस दिन जो तुमने कहा*

उस दिन
जो तुमने
कहा
वह कहा
तट तोड़कर बहा
और मुझ तक पहुँचा
उसमें डूबकर मैं रहा

24-10-1965

(अमृतराय के 11-10-1965 के लेख की प्रतिक्रिया)

* शीर्षक संपादक द्वारा

न कोई है....*

न कोई है
न होने की सम्भावना है
इस अंधकार के पड़ाव में
अलाव के जगाये
जग रहा हूँ मैं

25-10-1965

देह का विदेह*

कुछ खुल गया है
बिना खुले
उस देह का विदेह
जो मैंने पा लिया है

25-10-1965, रात

जमीन पर चलता हुआ मैं*

दिन ने मुझे
सूरज के साथ कर दिया
जो आसमान पर चढ़कर
मुझे देखता रहा
जमीन पर चलता हुआ मैं
जमीन का छोर खोजता रहा

25-10-1965, रात

समय का शंख*

मेरे हाथ में आ गया है
समय का शंख
जो मेरी फूँक से बजेगा
अवश्य बजेगा
सबको सुनाई देगा मेरा स्वर

28-10-1965

* शीर्षक संपादक द्वारा

धूप के अखबार में*

आदमी नहीं सुनता आदमी की बातें
मगर अंधकार सुनता है उसकी बातें
और प्रकाशित कर देता है
धूप के अखबार में

29-10-1965

गंध में उड़ रहा गुलाब*

गंध में
उड़ रहा गुलाब
निर्बंध बने रहने के लिये
प्राण से मिलकर
प्राण बने रहने के लिये
रहस्य की बात रहस्य से कहने के लिये

13-12-1965

खाली कटोरियाँ*

न आर्याँ रोटियाँ गुदार
गदोरियों पर
इन्तजार में सो गयी आग
सिर पर लिये तवा
देखते रहे हम
पेट और पीठ का मिलाप
और सामने
चाकुओं पर नाचतीं
खाली कटोरियाँ

29-12-1965

* शीर्षक संपादक द्वारा

न मैं किसी का*

जीकर भी
न जीने की संज्ञा से जीवित हूँ मैं
रुक गयी नाव के हाथ थामे
प्रवाहित जल में
अप्रवाहित खड़ा मैं
अजनबी—अकेला—
न मैं किसी का
न कोई मेरा।
मौत जी रही है मुझे
जिन्दगी के साथ
अपनी जिन्दगी में

20-10-1966, रात : 9 बजे

न जानने के पहले*

न जानने के पहले
जानता था
अँधेरा
जानने के बाद
नहीं जानता हूँ
न अँधेरा
न प्रकाश

15-1-1967

पते से दूर*

पते से दूर
लापता हूँ मैं
देखने में आज
बापता हूँ मं

20-1-1967

* शीर्षक संपादक द्वारा

कुछ नहीं है*

सब कुछ है
मगर कुछ नहीं है
जहाँ आदमी नहीं है
आदमी के भीतर
आदमी के बाहर

26-1-1967

वह न जाएँगे अभी....*

वह न जाएँगे
अभी
जाना है
जिन्हें
कभी
मौत के घर
मौत के पास
चुप
चुप
गुप
चुप।
मर मर मर ॥
ढलती शाम
ढले
फिर ढले
पहाड़ी की बर्फ
गले
फिर गले
पिघले
पिघले
पिघले

* शीर्षक संपादक द्वारा

वह
न जाएँगे
अभी
जाना है
जिन्हें
कभी
मौत के घर
मौत के पास
चुप
चुप
गुप
चुप
मर
मर
मर

वह
न शाम है
न बर्फ
कि ढलें
फिर ढलें
गलें
फिर गलें
पिघलें।
उनकी मछली
समद्रु चीरती है
अभी
अभी
अभी
नीला गहरा
अथाह ठहरा
जिसे मौत नहीं चीरती
कभी कभी कभी।

19-2-1967

शराब जो आँख में है*

शराब
जो आँख में है
उसे पी है जिसने
उसका नशा
आग में है
जो लगी है
पलास के वन में
मेरे मन में

10-3-1967

न जानो मुझे*

न जानो
मुझे
जानने के लिए
जानो
मुझे
न जानने के लिए

बिना जाने
जानने के लिए
जानना
-न जानना-
मुझे जानना है।

11-3-1967

पिये ज्ञान को....*

पिये ज्ञान को
लिये पड़ी है

* शीर्षक संपादक द्वारा

सूखी उड़ती रेत।
जिये ज्ञान को
खिले खड़े हैं
कल के-फल के खेत

1-4-1967, रात : 2 बजे

....अनाज न होने का*

मेरे गाँव में भी अकाल पड़ा है
और मैं कुछ न कर सका
न किसी का पेट भर सका
न जीने का सहारा दे सका
न मर सका उनके लिए
कि वह जियें

भला होता
अनाज होता
मनों-टनों में
खेत में उपजा
खाने के लिये
उनके लिये

उफ! कि मैं आदमी हूँ-
कि मुझे दर्द है आदमी होने का
अनाज न होने का

14-7-1967, शाम : 7 बजे

न कोई है*

न कोई है
-न कोई हो सकता
मेरा दुश्मन

* शीर्षक संपादक द्वारा

सिवाय मेरे
जो पशु है
पिशाच है
सब का अभिशाप है—
मैं उसे मारूँगा
बोध से
विचार से
कर्म और मर्म के प्रसार से

15-7-1967

आदमी को शक है*

सुबह फक है
रोशनी गफ है
आदमी को शक है
सुबह न होने का
रोशनी न होने का

28-7-1967

अकाल से लड़ता कमासिन*

अकाल के लड़ रहा है
मेरा गाँव
कमासिन
जहाँ मैंने
आदमी का जन्म पाया
आदमी की महत्ता जानी
जिसने मुझे दिया
सब कुछ
सब कुछ
जिसे मैंने
कुछ न दिया

* शीर्षक संपादक द्वारा

यह लड़ाई
खून की नहीं
पेट न भर सकने की लड़ाई है
यह लड़ाई
सब लड़ाइयों से बड़ी
निर्दोष जी सकने की लड़ाई है
इसे लड़ते हैं
आदमी और पशु
दोनों एक साथ
जहाँ दोनों बराबर हैं
प्राकृतिक गम के स्तर पर

यह लड़ाई
न पाप की लड़ाई है
न अधर्म की
यह लड़ाई अन्न की लड़ाई है
जो कहर बनकर आयी है

उम्र में बड़ा मेरा गाँव
अब भी मोहताज
जुगजुगा रहा है
जैसे दिया
रात की लड़ाई में
न मरने के एहसास से
जिन्दगी के विश्वास से

मैंने देखा :
—जो न देखा था—
आज से पहले कभी—
मेरा गाँव
भूखा गाँव
अनाज के इन्तजार में
डूबते सूर्य से
न डूबने की याचना कर रहा है

लेकिन सूर्य न रुका
और
रात ने ढँक लिया
अपने अंधकार से
मेरे गाँव को

29-7-1967

समय*

समय है
जैसे कोई नहीं है मेरा
मेरी कुहनी के पास

2-8-1967

लकीरें काटती हैं*

लकीरें काटती हैं लकीरों को
वक्र होकर
उलटकर
मुँह से
पूँछ से
पेट से
आदमियत से वंचित
पशुत्व की प्रतीक
स्रष्टा को सरापतीं
फटे सूर्य की दुनिया में

6-8-1967

समय को पी रहा हूँ मैं*

समय को पी रहा हूँ मैं
पानी की तरह
मुझको पी रहा है समय
गंध की तरह

* शीर्षक संपादक द्वारा

न चुका समय
न चुका मैं
हम जी रहे
दोनों
एक दूसरे के लिए।

24-8-1967

नशे में है अब समय*

समय को
मैंने
समय ने मुझे
जिया
समय ने
शराब
और
मैंने
पानी
पिया
नशे में है
अब समय
और रोता
हूँ
मैं

25-8-1967

पंख पा गयी मृदंग की आवाज

पंख पा गयी
मृदंग की आवाज

* शीर्षक संपादक द्वारा

बोलती चिड़िया
पकड़ से परे हो गयी
और मैं
सुन्न औ सपाट
जमीन हो गया
तलुओं से लगी
न जाने कहाँ
किस छोर तक गयी

1-9-1967

सब है मगर कुछ नहीं है*

एक हो गये हैं
मौत और जीवन
अस्तित्व और अन अस्तित्व
शून्य के दायरे में
जो हमारे देश की उपलब्धि है
इस युग की सबसे बड़ी अधिकाधिक विज्ञापित
कि सब है
मगर कुछ नहीं है
न आदमी है आदमी
न चीज है चीज
न जड़ है जड़ न चेतन है चेतन
न स्वर है स्वर न संगीत है संगीत
न सृष्टि है सृष्टि न दृष्टि है दृष्टि
टाँय-टाँय फिस

6-10-1967

आपद्धर्म

लोग हैं कि
कि औरतें बदलते हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

तलाक-बेतलाक
मुक्ति का प्रयोग स्वधर्म हो गया है
आपद्धर्म न बदलना हो गया है

6-10-1967

फकत नाम*

न औरतें औरत हैं
और
न मर्द मर्द
सिर्फ नाम हैं
फकत नाम
जाने
पहचाने
जनाने
मरदाने

6-10-1967

सुरागरसी में निकला चाँद*

सुरागरसी में निकला चाँद
अपने भाई सूरज को खोजता रहा
और खोजते खोजते डूब भी गया
जैसे भाई सूरज डूब गया

8-10-1967

आदिम गुनाह में कैदै*

अपनी गोलाई में कैद
बड़े आसमान का
खूबसूरत चाँद
न मिला मुझे

* शीर्षक संपादक द्वारा

बचपन में—
जवानी में
जहाँ मैं हूँ
आदिम गुनाह में कैद
उससे दूर
बहुत दूर
अकेला
जमीन पर पड़ा

8-10-1967

केन्द्र*

एक
लकीर ने लकीर को खा लिया
इसलिए कि केन्द्र ग्रहण में था
और, अँधेरा था

दो
केन्द्र
परिधि में चला गया है
और वृत्त में सागर
जमीन पर सवार है

तीन
केन्द्र
परिधि के बाहर नहीं देखता
और परिधि के बिन्दु
परिधि के भीतर और बाहर
सब तरफ सब देखते हैं

चार
व्यास हो या अर्धव्यास
केन्द्र के अंकुश हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

केन्द्र में नथे वे
परिधि के बिन्दुओं को नाथे हैं

पाँच

बाहर नहीं
वृत्त के भीतर है दुनिया
समय का वृत्त
न अतीत है—न वर्तमान—न भविष्य

छः

केन्द्र, न रहा केन्द्र
जब वृत्त सीधा हुआ
बिन्दुओं की सड़क हुआ

सात

वृत्त में कैद केन्द्र
घर का स्वामी है
लेकिन नपुंसक है

17-10-1967, शरद पूर्णिमा

हमको मिले पद्माकर*

सैर को गए थे हम
जहाँ कोई नहीं जाता
हमको मिले पद्माकर
हमने कहा चलो
बाँदा बुलाता है
इंकार किया उन्होंने
और
मन मारकर कहा
क्या करेंगे चलकर वहाँ?

* शीर्षक संपादक द्वारा

किस पर लिखेंगे कविता?
जवान नदियाँ सूख गई हैं
बिजलियाँ म्यान में सो गई हैं
और बरसात इतनी होती है कि हम डूब जाएँगे।
न कोई मछली है
न रंगीन रातें हैं
न हिरनियाँ हैं
और न हम हाथ उठा सकते हैं
कि दीपक की लौ को छुएँ (या नदी को गुदगुदाएँ)
टूटे शीशे हैं
और खाली दरीचियाँ हैं
शायद कोई मेंहदी भी नहीं लगाता
न कजली गाता है
सुना है कि हमारी कविताएँ सुनकर
वही कान बन्दकर लेती हैं जिन पर
हमने कविताएँ लिखीं
सवैय्ये लोहे के हो गए हैं
कवित्त वित्तहीन हो गया है
क्या करेंगे बाँदा चलकर?
तुम्हीं मौज मारो, हम यहीं अच्छे हैं
मैंने कहा
'मैं तो आपसे भी गया बीता हूँ'

1967

एक बच्चा हँसा*

मर गया हूँ मैं
पड़ोस की बूढ़ी औरत के मरने पर
जनाजा उठने के बाद
एक बच्चा हँसा
और फिर रोया
मरा हुआ मैं....जी उठा

* शीर्षक संपादक द्वारा

और फिर उसे गोद में उठा लिया
लगा, कि कोई नहीं मरा
सूरज, अब भी चल रहा था
रिक्शे पर दुनिया दौड़ रही थी
वह सड़क जो कभी नहीं उठी थी
उठ बैठी
और उसने मुझे लपेट लिया
मुझे प्रतीत हुआ कि मैं
खिले हुए गुलाब के बाग में हँस रहा हूँ
मेरी बातों में जिन्दगी दौड़ती हुई हरहराने लगी
मैंने बुढ़िया के दरवाजे झूमते बादल का हाथी बाँध दिया
और उसका घंटा बजने लगा
शून्य के उड़ते हुए गोले फट गए
और वियतनाम की लड़ती हुई जनता
मौत को मारने लगी
मेरी गोद का बच्चा सूरज के रथ पर बैठकर
दुनिया की सैर करने लगा
और वाशिंगटन पहुँचकर, उसने जान्सन के सिर पर
एक टीप मारी
गैलपपोल में जनता ने तालियाँ बजा दीं
और कॉसीगिन ने
माओ की ओर मुँह बिरा दिया
तभी मैंने पढ़ा
कि लोहिया बीमार हैं
इंदिरा गाँधी तीमारदार हैं
कविता ने कहा 'अब बस करो'
थोड़ा कहा बहुत समझना

1967

खाली जेब और चाय का प्याला*

प्लेट पर बैठा प्याला बुलाता रहा
मुँह से भाप छोड़कर

* शीर्षक संपादक द्वारा

और हम पास खड़े
बिना पैसे के उसे देखते रहे ।
जैसे कोई नेता अभिनेत्री को देखता है
आता न देखकर
मुहब्बत से भरा प्याला
कुछ ठन्डा पड़ा
और एक ने आकर
उसे उठा लिया
मैंने देखा, उसने पिया
बड़े स्वाद से
और चला गया स्वयम्बर जीतकर
मुझे छोड़कर
हाथ मलता

1967

मौत को पढ़ रही है जिन्दगी*

मौत को पढ़ रही है जिन्दगी
जो मर गयी है
अमेरिकी अनाज पाकर
कर्ज का जॉज बजाकर

19-10-1967

दमी आदमी*

आ
दमी आदमी आ
दम में वापस आ
अपना इंजन
आप चला
फिर से

* शीर्षक संपादक द्वारा

फिर से
फिर से

10-10-1967

चाँद झुक गया है*

चाँद झुक गया है खड़े-खड़े
अधरात के बाद
किसी के इन्तजार में
किसी के प्यार में
अकेला
फेंकता उजेला

22-10-1967

वह न अंधकार चाहता है न प्रकाश*

न उसके पास
अँधेरा है
न उजेला
कि सबका सब कुछ चुराए
दर्पण दिखाए
आदमी को, आदमी नजर न आए
अन्यथा मर जाए
फिर भी वह
न गरीब है
न नेता-न अभिनेता
कि गुल हो बल्ब की तरह
वाणी बंद हो
नाटक रुके
क्योंकि वह
न अंधकार चाहता है
न प्रकाश

* शीर्षक संपादक द्वारा

बल्कि जीना चाहता है जीवन
करते हुए काम
निर्माण की हर दिशा में

23-10-1967

आग*

कुछ है
इस जंगल में
सिवाय जंगल के
जो है आग है
सब के लिए
सिवाय सरकार के लिए
जो न बुझी
भभकी
फिर भभकी
प्रतिकार के लिए
अस्तित्व के अधिकार के लिए

25-10-1967

लिबास*

नंगा न हुआ आदमी बुरा हुआ
आदमी को खा गया आदमी का लिबास

26-10-1967

जेब के फटे कोट*

जेब के फटे कोट
अनफिट
तुम हो मुरदा
निर्वीर्य

* शीर्षक संपादक द्वारा

निरर्थक
न किसी के
न अपने
देखने में सबके

26-10-1967

घंटा*

घड़े में घुसा बैठा घंटा
न कोई खतरा
न कोई टंटा
कि बजे
फिर
दिन-दहाड़े
नींद के पहाड़ के
आगे पिछवाड़े।

26-10-1967

‘है’*

‘है’
जो अलग है
अतीत से कटा
भविष्य से कटा
अकेला
पूर्ण
स्वयंजन्मा
स्वयंजीवी
मौलिक
अपूर्व
न पिता,
न पुत्र,

* शीर्षक संपादक द्वारा

न वंशज,
निपूत
न गति है
न प्रगति
न भाव
न भाषा
न रंग
न रूप
ऐसा 'है'
न कहीं था
न कभी था
न कहीं है
न होगा
न मेरे पास
न किसी के पास
नमस्कार
इस 'है' को
जो नहीं है
नमस्कार उनको भी सबको
जो नहीं 'है' को
स्वीकारते हैं—
अस्वीकारते हैं

27-10-1967

नदी नहीं हो सकती आदमी*

नदी नहीं हो सकती
आदमी
न आदमी
हो सकता है नदी
अब भी आदमी अभी आदमी है
नदी अब भी नदी है

* शीर्षक संपादक द्वारा

बदला जमाना नहीं बदला
न प्रकृति बदली
न पुरुष
बदला
बदला परिवेश
यों नहीं बदला
कि आदमी और नदी
एक हों
अनस्तित्व में।

29-10-1967

मुझे नहीं जाना उस ओर*

अँधेरे पानी की सर्पाकार फुफकारती
गुफाओं में
न समय है जहाँ—न समय की गुफाओं
में सिद्धि
न समय का स्वीकार
न दिशा है जहाँ—न दिशा का बोध
न दिशा का संस्कार
सब कुछ छोड़ते पीछे अपना—सबका
रिक्त होते और भी रिक्त होते मुक्त होते
नग्न होते शरीर से अशरीर होते
तर्कित अस्तित्व से
अतर्कित अनस्तित्व में
अवसित होते
अजन्मा अमृत अगोचर रहने के लिए
चलते चले जाएँ चाहे जितने लोग
मुझे नहीं जाना उस ओर
वहाँ मुझे नहीं मिलेगी शान्ति

30-1-1967

* शीर्षक संपादक द्वारा

दफ्तर के बाबू*

रस
निकाल
लिए गए नीबू हैं
दफ्तर के
बाबू लोग

4-11-1967

आराम*

आराम
न जिसके हाथ है—न पाँव
सिर्फ धड़ है, बिना सिर का,
जैसा आराम मरा आराम है
घर से निकाल देने योग्य अविलम्ब
मसान में जलाने योग्य तत्काल

5-11-1967

तुमसे नहीं....*

मुझे
तुमसे नहीं
समाज से शिकायत है
जिसने तुम्हें मेरा अर्द्धांग बनाया
और अब
तुम्हें मुझसे चीर रहा है
आरे से,
बदहवास भीड़ में
डुगडुगी बजाकर
सबके सामने मौत का तमाशा दिखाकर
कि हमें टिकटियों में बाँधकर

* शीर्षक संपादक द्वारा

दिन दहाड़े भस्मसात करे
और खुद जिए, भीख माँगे
तब तक जब तक सब न मरें।

6-11-1967

मांसपिंड में बँधा*

मैं हूँ मांसपिंड में बँधा
अपनी जेल
कोई दूसरी नहीं है मेरी जेल

9-11-1967

आत्मिक प्रकाश*

प्रकाश
और प्रकाश
सुबह से शाम तक
और
प्रकाश
सूरज का दिया
जहान को मिला
मगर आत्मिक प्रकाश
इंसान को मिला
जो न सूर्य को मिला
न चाँद को मिला
न आग को
आदमी ने इसे तब
अतीत को दिया
भविष्य को दिया
वर्तमान को दिया

11-11-1967

* शीर्षक संपादक द्वारा

प्रकाश का सूरज*

मैं हूँ
आग का
प्रकाश का सूरज
स्वयं को प्रकाशित करता
सबको प्रकाशित करता
रोज-रोज उगता
रोज-रोज डूबता
सुबह हुई तो उदय हुआ
शाम हुई तो अस्त हुआ

11-11-1967

दर्द*

दर्द में डूबा
इतना डूबा मैं
कि दर्द परिवेश बन गया
और मैं
दर्द का अभ्यस्त
दर्द में जीने लगा
तमाम उम्र
दर्द से अलग न होने के लिए
तमाम उम्र दोस्त बने रहने के लिए
दर्द का

18-11-1967

मर गए हैं बिना मरे*

हम, जो मर गए हैं
बिना मरे-तुम्हारी बदौलत

* शीर्षक संपादक द्वारा

वस्तुओं की तलाश में
कीमतों से लड़ते
खून खच्चर के बगैर
तुम शाप दो
कि हम न जिँएँ
तुम्हें मरा देखने के लिए।

20-11-1967

पश्चिमी बंगाल के दो रूप*

एक
पानी था
पानी में डूब गया
पानी का पेड़

दो
कागज है
कागज में कैद हुआ
कागज का प्रेत

22-11-1967

बगुली ने वार किया*

बगुली ने वार किया
पंजे से
चोंच से
प्रहार किया
मछली को
मार लिया
घुटक गयी
पेट में उतार लिया

* शीर्षक संपादक द्वारा

सागर ने
रोष किया,
दोष दिया
बगुली को;
मछली का
शोक किया;
बाड़व को बढ़ने से रोक दिया।

29-11-1967

सिवाय उस अनन्त के*

कटोरियाँ
न कटोरियाँ हैं
न हम हैं हम
सिवाय उस अनन्त के
अरूप के
अनाम के
निर्गुण के।

13-12-1967, रात : 11 बजे

न द्वार खुला*

न
द्वार
खुला
न
आए
और
गए का
भ्रम खुला

27-11-1967

* शीर्षक संपादक द्वारा

मेरे पाँव मुझे पकड़े हैं*

मैं चल रहा हूँ
न चलने की गति से
मेरे पाँव मुझे पकड़े हैं
स्वच्छंद रहने के लिए
जकड़े हैं।

28-12-1967

पकड़ नहीं पा रहा*

सृष्टि में भरा समय
खाली है
और मैं
पकड़ नहीं पा रहा
उसकी नब्ज
नदी की नब्ज
धूप की नब्ज
घड़ी की नब्ज
साँस की नब्ज

28-12-1967

द्वन्द्व के बगैर*

है
और नहीं है समय
शून्य में
और नहीं है तात्पर्य
समय का
द्वन्द्व के बगैर
न सृष्टि है
न समय

* शीर्षक संपादक द्वारा

न कुछ
तात्पर्य बस यही है

28-12-1967

आदमी का पानी*

पानी—
जो था आदमी का पानी
दहाड़ता
स्वाभिमानि :
संघर्ष की जवानी :
पालतू है अब
आदमी का पानी
न रह गया है तेज—
न है तरार
न धारदार
कि उमड़े
बह जाय जंगल

29-12-1967, रात

न मरे हैं हम*

न मरे हैं हम
न जिए
बूँद से
बूँद की
लड़ी बने
ओस के
ओस ही
रहे

* शीर्षक संपादक द्वारा

जहाँ थे
आज भी वहीं है
मरे-मरे

4-1-1968

न आदमी है....*

‘न आदमी है
न आदमी का बच्चा
क्लर्क है
सुअर का बच्चा’।
ऐसा कहा
अफसर ने
चैम्बर में
—अपनी देह देखते हुए—
और हँस पड़ा

18-1-1968, रात

नदारद अस्तित्व का अनन्त सुनसान*

न धूप को है
न सैर को है
अपना एहसास
मगर है
जैसे नहीं है
आदमी के पास
आदमी की शक्ल
आदमी का बोध
आदमी की अक्ल
उसका अस्तित्व

* शीर्षक संपादक द्वारा

सपाट है—
सपाट
नदारद अस्तित्व का
अनन्त सुनसान

27-1-1968

गाँधी के चित्र को देखकर*

दुख से दूर पहुँचकर गाँधी ।
सुख से मौन खड़े हो
मरते-खपते इंसानों के
इस भारत में तुम्हीं बड़े हो

जीकर जीवन को अब जीना
नहीं सुलभ है हमको
मरकर जीवन को फिर जीना
सहज सुलभ है तुमको

30-1-1968

न डूबे हैं जहाँ*

न डूबे हैं
जहाँ
न डूबते हैं
वहाँ डूबते हैं
और डूबे हैं
हम और हमारे जहाज
रेत के सागर में

3-3-1968

* शीर्षक संपादक द्वारा

दल-बदल*

'दल-बदल' के बादलों
का छल खुला
जल मिला तो वह मिला
विष से घुला

11-3-1968

सुबह न हुई....*

सुबह न हुई
रात के बाद
शाम हुई
फिर रात हुई
आपके राज में
सुबह का इन्तजार
हमें बुढ़ा गया
बुढ़ा गए हम।

11-3-1968

रुपया राम हो गया है*

रुपया राम हो गया है
धर्म की सीता को आराम हो गया है
गाँव घर में कीर्तन सरनाम हो गया है
मजूर की बेटी गीता का नाम
बदनाम हो गया है

11-3-1968

अपना सुख अपने आदमी के साथ*

नदी है
जो लबालब भरी है

* शीर्षक संपादक द्वारा

घास है
जो ठसाठस हरी है
एक के पास दूसरी पड़ी है
संविधान में
आदमी नहीं जी रहा है
अपना सुख अपने आदमी के साथ
हवा जानती है
आसमान जानता है
जमीन जानती है

13-3-1968

मैंने कुछ नहीं कहा*

मैंने कुछ नहीं कहा
जो कुछ कहा
शब्दों ने कहा
और
सच कहा

मैंने कुछ नहीं कहा
तथ्यों ने कहा
और सच कहा

बिना कहा तथ्यों का
शब्दों का
बहुत-बहुत बचा रहा
और अभी और अभी
कहने को
ललच रहा।

13-3-1968

* शीर्षक संपादक द्वारा

कोई है*

कोई है
जो मुझसे दूर गल रहा है
बर्फ की तरह
नदी बनकर
मुझसे मिलने के लिए
प्रमाण के बाद
समय के सिंधु से

17-3-1968, रात

नदी है*

नदी है
अब भी है
तट के पास
तट से सटी

2-4-1968

केला*

समय बदला
कटे पत्ते
बड़े लम्बे हौसले के :
जड़ें गाड़े खड़ा केला
अब अकेला
तना भर है,
जिए चाहे जिए जैसे,
बना भर है,
हरा हरदम गया
गम से नहीं दहला

4-4-1968

* शीर्षक संपादक द्वारा

अतल तम है*

सूर्य मद्धिम
हुआ, झुककर
चला पच्छिम
पूर्व छूटा
मध्य-मद का दर्प टूटा
मुकुट मणि का गया लूटा
डूबने का
रोशनी के रूठने का
समय आया
अतल तम है सघन छाया

4-4-1968

हो, न हो सुबह*

हो, न हो सुबह
रात तो आप के राज में
बड़ी लम्बी है
भर पेट सोने के लिए

7-4-1968

मृत्युञ्जय उपाध्याय के प्रति*

तुम मेरे पास के
हृदय के
बहुत प्यारे कवि हो
मृत्युञ्जय!
तुमने
लिखीं हैं जो कविताएँ
स्वानुभूति से
सहज लिखी हैं,

* शीर्षक संपादक द्वारा

सत्य
जो छोटे हैं
जिन्हें कोई नहीं छूता,
तुमने छुआ
कविताओं में
उन्हें पेवस्त किया
अब वे सत्य
आदमी के अमित सत्य हैं

15-4-1968

राजकमल पर*

वह मर गया
मौत को बुलाकर जल्दी

न जीने की मुक्ति पा गया वह
जीने के बन्धन से त्रस्त

उसकी मुक्ति
उसे मिली
बैरोमीटर के टूटने से
जिन्दगी नापता था जो
हरेक साँस की
गर्म हो या सर्द

उसका पहिया
पटरी से उतर गया
और वह
अकेले में लुढ़क गया
एक ऐसे वीरान में
जहाँ न कोई गाड़ी गई
न रुकी

* शीर्षक संपादक द्वारा

उसका दर्द उसी का दर्द था
भीड़ से भागकर
अकेले में रहने
और सहने का
वह दर्द
उसे खा गया, मुक्ति के नाम पर

जहाँ तक जिया
और जितना जिया
खुद में जिया
और खुद के विचार से जिया
न हवाओं के साथ जुड़ा
न भविष्य की ओर मुड़ा

उसने लिखा
दिमाग की तनी नसों से
हाथ की तनी नसों से नहीं।
उसका काव्य—
उसके दिमाग के उबाल का काव्य और गद्य है
हाथ के काव्य और गद्य से भिन्न
उग्रतारा की ओर उन्मुख,
सर्वहारा से विमुख

वह जमीन जो उसकी थी
सबकी न थी
उस जमीन में कुछ न उगा सबका
न वह रही—न वह रहा

उसका शीशा गलत शीशा था
न जिसमें दुनिया थी—
न आदमी का मुँह
सिर्फ वह था

जिसे मुक्ति चाहिए थी
अपनी बलि देकर
उसकी मुक्ति बड़ी महँगी है
न कोई चाहे
न कोई पाए
न कोई
जिन्दगी गँवाए
उस-सी मुक्ति के लिए

17-4-1968

धूप हुई अंधी*

न हुआ दण्डित
दंड का भागी
छूट गया
हाथ आया अपराधी
जिसने किया न्याय
नहीं किया न्याय
चक्कर में चूक गया
मक्कर के,
न्यायी
लिखना था सजा
और लिख गया रिहाई
सच का सच नहीं हुआ
धूप हुई अंधी
कागज में बैठ गई
जगह-जगह मक्खी
पानी ने नहीं सुने पानी के बोल
गलत-सलत निर्णय का
गलत रहा रोल।

23-4-1968

* शीर्षक संपादक द्वारा

हमारा कोई चेहरा नहीं है अपना*

हमारा कोई चेहरा नहीं है अपना
हम बाहरी चेहरा लगाए हैं
आदमी का
आदमी कहलाने के लिए

हमको नहीं मालुम
हमारा
भीतरी हम

बाहरी हम
जो हमें जी रहा है
हम उसे जानते हैं
अपनी इन्द्रियों से

उसका जीना
हमारी जिन्दगी है
उसका मरना
हमारी मौत

12-5-1968

न दिल में दिया, न आँख में रोशनी*

आदमी डूब गए
सिर की उल्टी नावों में
बिना डूबे
अपार सागर में
न दिल में दिया
न आँख में रोशनी
इतिहास लिख गया अँधेरे का
डूबने-डूबने का

13-5-1968

* शीर्षक संपादक द्वारा

हवा ने छोड़ दिये*

हवा ने छोड़ दिये
अपने
बेलगाम दौड़ते
बलिष्ठ घोड़े
यथार्थ के समर्थन में

अतीत से जुड़ा वर्तमान
त्रस्त है
जमीन पर
रौंदते खुरों के
घटना-चक्र से

समाप्त हो गया है
समय का
स्थित-प्रज्ञ संतुलन
क्रान्तिकारी उलटफेर के
बल और वेग से

दिन और रात के जोड़
खुल गए हैं
अबंध घुड़दौड़ के लिए

प्राचीन को चीरता बढ़ रहा है
उत्तरोत्तर आगे
आग का समूह
प्रतिगामी इकाइयों को
परास्त करता

पूर्ववत्
न रहे

* शीर्षक संपादक द्वारा

यथास्थान
भूगोल के
सुरक्षित
अक्षांश और
देशान्तर

14-6-1968

स्वर का समारोह*

पनवाड़ी ने कर दिए
सबके मुँह लाल
न ऊँचे
न नीचे
सब हो गए
एक दूसरे के ओंठ देखकर निहाल

गाने लगीं
रेडियो से तभी
लता मंगेशकर
आशा भोंसले
और रफी ने
चलती सड़क पर संगीत बिछा दिया
वायु में तैरता
गूँजने लगा स्वर का समारोह
रात खिल उठी
बिजली की पंखुरियों पर
जमीन पर नाचने लगे
स्वप्न और सौन्दर्य

27-6-1968, रात : 8.30 बजे

गाँव की सड़क*

गाँव की सड़क
कच्ची है

* शीर्षक संपादक द्वारा

हाथ से बनी
पाँव से बिगड़ी
यही इसकी किस्मत है

23-8-1968

उपन्यास*

एक
अँधेरे में
घुसते चले जाते हैं कथाकार
सुरंग का सत्य पकड़ने के लिए
पीछे छोड़कर
जीते जागते जूझते इंसान

25-11-1968

दो
पस्त हो गई हैं
हाथ की अँगुलियाँ
गाँठ की पर्त खोलते खोलते
अँगूठे
अब भी खड़े हैं
संघर्ष में सिर कटाए
आदमी का सिर
विध्वंस से बचाने के लिए

25-11-1968

तीन
बड़े चाव से
चंदन घिसते चले जाते हैं
छोटी बड़ी लाइन के
चरित्र के उपन्यास
यथार्थ की पटरी
जगह-जगह टूटी है

25-11-1968

* शीर्षक संपादक द्वारा

चार

वृत्त हैं
त्रिकोण हैं
आदमियों के लिए लिखे
आदमियों के उपन्यास

26-11-1968

पाँच

मर्ज हैं
मरीज हैं
अब के उपन्यास
अस्पताल हैं
बिना डाक्टर के

26-11-1968

छः

उपन्यास से अच्छा
उपन्यास का विज्ञापन है
जिसे
स्वनामधन्य लेखक ने
बिना पढ़े लिखा है

26-11-1968

सात

आदमियों के
जेब कतर लेते हैं
बढ़े चढ़े मूल्यों के उपन्यास
आँख से पढ़कर
दिल और दिमाग से
भोगना पड़ता है संत्रास

26-11-1968

गधों के निकल आए हैं पैसे सींग*

गधों के
निकल आए हैं
पैसे सींग
जमीन और आसमान को हुरेटते हैं

बैल
अब बिक गए हैं
बाजार में
कुबेर का रथ वही खींचते हैं
उन्हीं की सब्जी सींचते हैं

बेकार हो गए हैं
घाट के धोबी,
खेत के किसान
युगचेता
समय के अभिनेता

27-1-1969

घर के फूल*

घर के फूल
घर में नहीं महकते
घर के बाहर
विदेश में महकते हैं

27-1-1969

शब्द हो गए हैं नंगे*

शब्द हो गए हैं नंगे
अर्थ नहीं खुलते

* शीर्षक संपादक द्वारा

अनर्थ अश्लीलता
घंटी बजाती है
व्यापक खतरे की

31-1-1969

सूर्य की अंधी आँख खुली है*

देखने को बहुत कुछ दिख रही है
न देखने खाली आँख खुली है
और कुछ नहीं दिख रहा
देखकर देखना गायब है
सूर्य की अँधी आँख खुली है
न देश दिखता है
न विदेश
न पहाड़ जैसा क्लेश
न चीरता आरा
न पेट भरने को चारा

19-2-1969

जिधर पहुँच जाती है तुम्हारी छाया*

तुम नहीं छोड़ते भोग-सम्भोग
तुमसे बगावत करते हैं लोग
जिधर पहुँचती है तुम्हारी छाया
उधर फैल जाते हैं बुरे रोग

6-3-1969

दर्द के सिर में*

दर्द के सिर में
दर्द है पद का
सर्व साधारण से
असाधारण हो गए कद का

9-3-1969

* शीर्षक संपादक द्वारा

कोई देखता है मुझे*

कोई देखता है मुझे
मेरे भीतर
और बाहर
मेरी तरह का
मुझसे मिलता
परिचय में अपरिचय
व्यक्त में अव्यक्त
लिए
बड़ा हमदर्द
मगर दर्द से मुक्त
निर्विकार
निःसंग
निरलस
नितान्त समदृष्टा
न कोई गैर
न कोई और

14-3-1969

कागज में लिखे लोग लेते हैं साँस*

कट गए बाँस
और मिट गई फाँस
बन गए कागज का बन गया देश
कागज में लिखे लोग लेते हैं साँस

24-3-1969

कीमतेँ*

और से
और का कुल बढ़ा

* शीर्षक संपादक द्वारा

कीमतों का दल-बादल
पहाड़ पर चढ़ा

14-3-1969

घूस का घोड़ा*

स्वधर्म हो गया है वेतन का बचाना
ऊपर की आमदनी का पैसा खाना
ज्यादा से ज्यादा नाजायज कमाना
तरह और तरकीब से पकड़ में न आना
क्या खूब है जमाना।
बे लगाम दौड़ता है घूस का घोड़ा
रौंदने से इसने किसी को नहीं छोड़ा
बेकार हो गया है कानून का कोड़ा
रोक नहीं सकता इसे कोई रोड़ा
दम इसने कब तोड़ा।

15-4-1969

बाँदा की गरमी में नल का पानी*

टप
टप
टपकता है
खून
जैसे कटी उँगली से
वैसे
टपकता है
टप
टप
टप पानी
नल से
न पियो
न जियो

25-5-1969

* शीर्षक संपादक द्वारा

चिनगी*

वह
गई नहीं
ले जाई गई जबरन
दाबकर चिमटे से
चिनगी
चिलम में पहुँचाई गई
और पी जाई गई
जैसे गाँजा
न वह रही
न उसकी याद

30-5-1969

बादल*

बादल ने बदल दिया मौसम का रुतबा
पानी का व्याप गया
दुनिया में दबदबा
ऊपर को उमड़ चलीं नीचे की नदियाँ
टूटे पुल
टूट गई
टूक टूक सदियाँ

24-7-1969

मैं हूँ मैं*

मैं हूँ मैं
और
तुम हो तुम
और मैं और तुम
सर्वनाम हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

आदमी की संज्ञा के
जिसका अस्तित्व
विज्ञान और तकनीक के
व्याकरण में है

27-7-1969

कुंठित संज्ञा*

कुंठित हो गई है
देश की संज्ञा
अकर्मक क्रियाओं से
सकर्मक क्रियाएँ
संलग्न हैं
कुंठित संज्ञा का
युग-बोध रचने में

27-7-1969

आदमी*

एक
आदमी देखते हैं
अपनी दिशाओं के दर्पण में
दौड़ते आ रहे कल को
कायर निकम्मे डरते हैं
इस आ रहे कल से बचने के लिए

27-7-1969

दे

आदमी को
मैंने
टेलीविजन में देखा
सिर पर उठाए धरती
पाँव से दबाये चाँद

* शीर्षक संपादक द्वारा

और मैं
खुश हूँ

27-7-1969 (सन् 1969 के आदमी से)

हम आदमी नहीं*

हम
आदमी नहीं,
लिबास में
आदमी हैं।
यह लिबास
'सरकसी' जानवरों का है
जो
हमें
अपनी नसल का
समझते हैं।

सितम्बर 191969

कट चुके खेत में*

कट चुके पहले
सिर
और धड़
अब
पाँव—
सिर्फ पाँव
खेत में खड़े
कुछ नहीं जानते
कैसी क्या दुनिया है
कैसा क्या मौसम है
कैसा क्या साल है।

सितम्बर 1969

* शीर्षक संपादक द्वारा

ताल में तैरती हैं*

ताल में
तैरती हैं
अंग के अनंग की
मछलियाँ
गाँव के गले में
पड़ा है
धुआँ
नीलकण्ठी अभिशाप
आँखों में करकता है।

20-3-1970

बेकार हूँ मैं*

कल के पेट में पड़ा
कल का
अबार हूँ मैं,
छप चुका मैं,
पढ़ चुके
लोग,
बेकार हूँ मैं

23-3-1970

फूल हो गई हँसी*

फूल
हो गई हँसी
रात के सितारों की
दिन हुए
पेड़
और

* शीर्षक संपादक द्वारा

पेड़
खिलखिलाए हैं

काल
और काम की
डसी
जिन्दगी जागी,
हर्ष
और
हास के
हर्म्य
महमहाए हैं

नाश की
निशा गई,
नींद का नशा टूटा,
जागरण के
पंथ
पंथी
तमतमाए हैं

2-4-1970

हरेक बंद है*

हरेक
बंद है
अपने नारियल में
हरेक
कवच है
अपने
गूदे का

3-4-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

सूरज और मेमना*

घास का भूखा
घास जानता है, मेमना
सूरज नहीं जानता
बेघास की ऊँचाई
नहीं जानता मेमना

सूरज
सफेद दाग है
मेमने के लिए
न आग है
न प्रकाश
मेमने के लिए

3-4-1970, रात : 8 बजे

खोपड़ों पर लट्टु*

खोपड़ों पर
लट्टु
जमीन पर
लटैत
चलते हैं,

जिन्दगी पर
मौत
और
विनाश के
ठगैत
पलते हैं

9-4-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

परम्परा*

परम्परा
एक ठिकाना है
कुंड में कूदकर
जीने का बहाना है

कुंड में जीना
कुंड का पानी पीना
जानते-बूझते
बेमौत मर जाना है

गहरा कुंड
गहरा नहीं है
कुछेक मुकाबले में
आदमी गहरा कहीं है

18-4-1970

(12.4.1970-19.4.1970 के 'धर्मयुग' में दिनकर की कविता पढ़कर)

अंडा-मुरगी*

सिर पर सवार है आसमान
आग का अंडा
आसमान पर धरा है

जमीन की मुरगी
आसमान का अंडा नहीं सेती

19-4-1970

सच-झूठ*

सच पर
लदे हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

झूठ के पोथने
न्याय की मुहिम
सच को नहीं उबारती
संत्रास से

3-6-1970

झूठ अब झूठ से लड़ता है*

झूठ
अब
झूठ से
लड़ता है
जीता
झूठ
हँसता है
हारा
झूठ
रोता है

3-6-1970

विधाता*

जिन्हें
कुछ नहीं आता
वही हैं ज्ञाता
युग के
आज के
विधाता

11-6-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

मैंने अब तक मति बेची है*

मैंने
अब तक
मति बेची है
सात साल तक
कीलित रहकर
मन की मुक्त
प्रकृति बेची है
हर हफ्ते के
सोमवार से शुक्रवार तक
मैंने अपने
हर सूरज को
चालिस रुपए में बेचा है
और शनीचर के सूरज को
उससे आधे में बेचा है
छुट्टी का इतवारी सूरज
बेच न पाया
मेरे कोई काम न आया।

18-6-1970

न्याय की कुर्सी*

न्याय की कुर्सी में लगा है एक यंत्र
शताब्दियों पुराना
प्राचीन धातु का बना
सामायिक औचित्य से अजान
अतीतधर्मी
संज्ञान
जाँचता है वर्तमान।

19-6-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

आँख से हँसो*

मैं
पक आया नाज तुम्हारे खेत का,
मुझे काट लो,
रख लो अपने पास,
आँख से हँसो
ओठ से गाओ
नाचो धरती पर पाँवों से
हर्ष मनाओ
मैं
मनभाया नाज तुम्हारे खेत का

20-6-1970, शाम

त्रिलोचन*

दूसरे
और-और कवि
आज भी
अब भी
उम्र और अक्ल में
उनसे छोटे-बहुत छोटे-सच में बौने
बड़े हो गए
रातों-रात
छत पर चढ़ गए
त्रिलोचन से
बेमतलब
बिलावजह
बेभाव
बड़बड़ाकर
कथ्य और शिल्प में
जगह-जगह गड़बड़ाकर

* शीर्षक संपादक द्वारा

और वह
अब भी, आज भी
कलम भाँजता है
भँजी को फिर भाँजता है
जैसे मुगदर

28-8-1970

समय का शीशा*

समय का शीशा
चमकता रहा तमाम रात बिजली का
शक्ल अपनी
देखता रहा वयोवृद्ध पेड़ इमली का
सामने खड़ा,
दुनिया देखते-देखते हो गया बड़ा,
झेलते-झेलते कष्ट-पर-कष्ट दिन रात
नहीं उखड़ा,
सोचते-सोचते सोच में पड़ा,
जिन्दगी जीने का रहस्य खोजता रहा

31-8-1970

दिये के सिर पर सवार*

दिए के सिर पर सवार
झूमता-झामता खड़ा है हाथी
निबिड़ अन्धकार का
पाँव से कुचलने को
सनेह का सिंगार

फिर भी
दुस्साहसिक
नहीं कर पा रहा वार

* शीर्षक संपादक द्वारा

उस दिए पर एक भी बार,
देखकर उसे
निष्कम्प लड़ने को तयार,
प्राण-पण से करता,
प्रकाश का संजीवन प्रसार।

31-8-1970

नदी और हाथी*

नदिया में
हैल गया हाथी
प्रेम से
पानी ने
छाप लिया
क्षेम से

31-8-1970

मौत हो गयी सुबह की*

मौत
हो गयी
सुबह की
आँख खुलते-खुलते
दिन-का-दिन
समाप्त हो गया
सूचना देते-देते

11-9-1970

श्रम का वेद*

चल रही हैं चीटियाँ
लकीर में
एक बिल से दूसरे बिल की ओर

* शीर्षक संपादक द्वारा

रुकना मुहाल है उन्हें
बीच की यात्रा में
कहीं
बिल से जुड़ी है बिल,
जमीन के जीवन में
न फौज है
न फाटा है
हरेक चींटी ढोये जा रही है आटा
दिन हो या रात
चींटियों की जमात नहीं टूटती
श्रम का वेद
चींटियों ने चलकर लकीर से लिखा है
लकीर से बना देश
श्रम का देश है
ऐसे देश में
न दुःख है
न दरिद्रता।

15-9-1970

अहं*

न द्वार खुला
न दिवार गिरी
हम
मन की मछली
मन के तालाब में मारते रहे
अहं का जाल
स्वयं को
छलने के लिए
पसारते रहे।

12-10-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

हवा के घोड़े*

हिच आए घोड़े
मन की दौड़ में
दौड़ते निगोड़े
घुड़सवार को ले उड़े
अब हवा के घोड़े
निगोड़े
सब कुछ छोड़े

12-10-1970

दिये को दबोच नहीं सका अँधेरा*

रात भर डाले रहा घेरा
दिये को
दबोच नहीं सका अँधेरा
जलते-जलते हो गया सबेरा

12-10-1970

बिन्दु का अस्तित्व*

बिन्दु का अस्तित्व
बिन्दु में नहीं
लकीर में है
देश और काल
जिसे
खींचते हैं
करण-कारण के मिलाप के लिए
अपने
नाश और निर्माण के द्वन्द्व की
क्रिया-कलाप के लिए

21-10-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

क्षण*

नहीं रह सकता अकेला
अपने आप
देश-काल से मुक्त
न हो सकता है ऐसा क्षण
न जिया जा सकता है ऐसा क्षण
न दुहराया जा सकता है ऐसा क्षण
न स्वतः पूर्त हो सकता है ऐसा क्षण
न रूपायित हो सकता है ऐसा क्षण
न पाया जा सकता है ऐसा क्षण
क्षण में
न कोई चिड़िया उड़ी है
न कभी उड़ेगी
न घोंसला बना है, न बनेगा
न बादल बरसा है
न बरसे में
क्षण की बत्तख
अनन्त क्षणों की बत्तख है

21-10-1970

तुम्हीं आओ न*

केन नदी से दूर-बहुत दूर
मैं बैठा हूँ-
खिन्न, नतमुख, उदास;
न आएगी यहाँ मेरी नदी-
न कोई उसकी लहर।
तुम्हीं आओ न
मेरी नदी के-
उच्छल, अधीर, लहरों के
कल्लोल

* शीर्षक संपादक द्वारा

कगार पर छाप मारती हुई
उच्छल, अधीर, लहरों के
हिल्लोल

21-10-1970

न आये की प्रतीक्षा में*

न आए की प्रतीक्षा में
न आए से सम्बद्ध
मैं—
न आए के बोध को
अपने बोध में
जी रहा हूँ
अपने लिए
उसके लिए

21-10-1970

स्वर*

स्वर से
सितार और आदमी
देश-काल में पैरते हैं
स्वर का एक छोर
दूसरे छोर से जुड़ा है
बीच में
सितार और आदमी झूलते हैं
स्वर हुआ निःस्वर
न आदमी झूलता है
न सितार।

22-10-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

ब्रांज का घोड़ा*

घोड़े को देखकर
घोड़ा बनाया
शिल्पी ने
ब्रांज का,
घोड़े मर गए
ब्रांज का घोड़ा नहीं मरा
ब्रांज का घोड़ा देह और प्राण में
एक है।

22-10-1970

याद से बाहर*

क्या कुछ हो गई वह
कि
याद है वह
और वह नहीं है
याद से बाहर
मूर्तिविधान में

22-10-1970

दर्पण हुआ पानी*

थककर
बहाव का पानी
थिराव में थमकर
दर्पण हो गया
तुम्हारे दर्शन का मुखापेक्षी

23-10-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

आँखों में आसमान डूबा है*

आँखों में आसमान डूबा है
कोई तो एक मीन थाह ले
जीकर अवगाह ले

23-10-1970

जो कुछ किया है*

जो कुछ किया है मैंने
खुलकर, खेलकर किया है मैंने
आग और नाग के पाश को
झेलकर किया है मैंने
और उस किए को दूसरों को
दिया है मैंने
उस दिये को अपना लिया है
फिर जिया है

23-10-1970

हम बिन्दु हैं*

हम बिन्दु हैं
बिन्दुओं के सगे
लकीर में लगे
सबसे जुड़े
जहाँ भी गए
लकीर हो गए
लय में लीन हो गए

23-10-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

तुम और मैं*

तुम और तुम
और
मैं और मैं
एक हैं
द्वन्द्व और द्वैत के सर्वनाम ।

23-10-1970

फूल*

सूख गए फूल
देवता पर चढ़े
निर्देव फूल
पेड़ में लगे
हरे हैं
नहीं
अब तक
नहीं झरे हैं

23-10-1970

कोई एक क्षण अकेला नहीं है*

काल में
कहीं कोई एक क्षण
अकेला नहीं है
निदाग अलग-सबसे अलग
कि
हो तो वही हो
मात्र उसकी प्रतीति हो
और कुछ न हो उसके साथ
न अन्य की प्रतीति हो

5-11-1970

* शीर्षक संपादक द्वारा

करमदंड*

मुझको ही मार गया
मेरा करमदंड
और मैं
कराहता हूँ
अतीत से जुड़े वर्तमान में
भविष्य का कंधा
पकड़कर
जीने के लिए
भविष्य नहीं दिखता मुझे
कि छुँऊँ
और जिन्दगी में जिऊँ
जैसी नहीं जी मैंने
अब तक
एक भी क्षण

10-11-1970, रात

चमके छवि के केतन*

भागता
चला गया
भयंकर
भीमकाय
अँधेरा
रात पर डाले रहा था जो डेरा
खुलती
चली गई
रंगीन
अक्षितिज
हर्षित दिखी
धैर्य की धरती

* शीर्षक संपादक द्वारा

नाम और रूप से परिचित
प्रकाशित सुबह
चेतन
चमके छवि के चेतन।

12-11-1970, रात : 10 बजे

गीत ने गूँज पा ली है*

खट-खट-खट!!
खतरा नहीं
खटका नहीं
मात्र संकेत है सत्य का :
कि डकैत अँधेरा पकड़ गया है
उदार रोशनी का रथ आ रहा है
गरीब चिड़े ने आँखें खोल दी हैं,
व्योम में उड़ने जाना है
नदी ने राह खोज ली है
उसे समुद्र से मिलने जाना है
गीत ने गूँज पा ली है,
गूँज को गूँज से मिलने जाना है।

14-11-1970

रार और दाँती*

हाथों में लिखी हुई
'कटा जुज्झ' रेखा है
'रार' और 'दाँती' में
विराम नहीं देखा है
खोपड़ों पर
लट्ट
और जमीन पर
लटैत चलते हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

त्रासदी के
अलाव
गाँव-गाँव में
जलते हैं।
सिर पर
सवार है खून
धारियों में बहता
पैर तक पहुँचता
मौत का दुआर
अब जीवन में
जगह-जगह देख लिया
खुलता है।

20-11-1970

(यह कविता 9.4.1970 को लिखी 'खोपड़ों पर लट्ट' का विस्तार है। सं०)

टाँड़*

आरियों से चीरे गये हम,
बुरादा बने-पाट बने हम,
फिर भी तुमने हृदय न रक्खा
दिया जलाकर हर्ष न रक्खा
पंख खोलकर प्यार न रक्खा
कनक किरन का हार न रक्खा
यौवन का आभार न रक्खा
हम पर अंगड़-खंगड़ रक्खा।

15-12-1970

(यह कविता 22-11-59 को लिखी कविता का परिष्कृत रूप है)

गर्म-सर्द हवाएँ*

मर गईं गर्म हवाएँ
धूल-धक्कड़ उड़ाकर

* शीर्षक संपादक द्वारा

घर और घोंसले फूँककर
और अब
सर्द हवाएँ
बर्फ मारकर
जला दिल ठंडा कर रही हैं

25-12-1970

बेकार हो गया है*

बेकार हो गया है
राग और रागिनियों का
गणित अब पहले का
संगीत से समाज को
नहीं बना सकता
तबले का वही-वही ठेका।

30-12-1970

मरे का नाम मुरदा है*

मरे का नाम
मुरदा है
जिए का काम
मुरदा है
न नाम आता है काम,
न काम आता है काम

19-3-1971

खजुराहो में*

जगह-ब-जगह
लॉन पर खड़े हैं
पेड़ बोगनबेलिया के
आदमकद,

* शीर्षक संपादक द्वारा

खिले,
इकदम खिले,
जी-जान से खिले,
फूल-फूल हो गए खिले,
सफेद गुलाबी बुंदियों के

मैं देखता हूँ इन्हें
और कुछ नहीं देखता
जबकि लोग
कामातुर मूर्तियाँ देखते हैं
मन्दिरों की,
नर और नारियों की
मिथुन-मुद्राएँ देखते हैं
छोंट से छपे
नन्हें-मुन्ने फूल-
खुश, खुश,
बहुत खुश फूल,
स्वप्न और सौन्दर्य के जाए फूल,
-धूप मारते सूरज में भी-
न मुरझाए फूल,
मन में समाए फूल,
बड़े अच्छे लगते हैं मुझे
बड़ी अच्छी लगती है दुनिया
भीतर
बाहर

21-3-1971

खजुराहो जाते में*

जहाँ
सब ओर है
धूल-धूसर,
बिना पानी का

* शीर्षक संपादक द्वारा

प्यासा प्रदेश,
और
जहाँ
बाँध तक चली गई है,
दौड़ती,
हाँफती,
धूप से धधकती,
पानी तलाशती सड़क
वहाँ
उस विषण्य में
दिखाई दे गए मुझे
तीन पेड़ कचनार,
कमर से ऊपर छतनार,
फूले,
बैंगनी,
जानदार,
जैसे जवान गँवई दिलदार;
और
मैं देखता रह गया इन्हें
ठगा
भूला भरमाया
और फिर
हो गया
तीन के पास खड़ा,
चौंका पेड़ कचनार,
वैसा ही छतनार,
फूला,
बैजनी,
जानदार, मैं
जैसे जवान गँवई दिलदार,
हर्ष से हरता, मारता,
विषण्य का तिलमिलापन

22-3-1971

में हैरान*

तने खड़े
ताने कसते हैं लोग
मुझे लगा है सूखा रोग
में हैरान
घर में
हूँ वीरान

24-3-1971

इंतजार में तुम्हारे*

चुप हैं
मुँह बंद किए कलियाँ
इन्तजार में तुम्हारे
मुस्कुराने को,
आँख की शराब
तुमको पिलाने को

24-3-1971

दल बँधा फूल*

दृढ़
हो तुम
वृन्त पर जैसे खिला
दल-बँधा फूल
यद्यपि
पवन है
तुम्हारे प्रतिकूल

24-3-1971

उठ गया है समय का परदा*

हंस
तैरते हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

पानी में

हंस
और पानी
प्रसन्न हैं दोनों
एक समान
एक आप्त आलिंगन में

हिरन की आँखों में
होता है मोर-पंखी नाच
और
नाच में
हिला है
मदन महाराज का
सुघर सिर-मौर

अब
मिल गए हैं
प्राण और पुकार
स्वप्न और
सौन्दर्य के रमण में

उठ गया है
समय का परदा
द्वैत से अद्वैत
हो गए हैं
पुरुष और प्रकृति

24-3-1971

तुम पा गए*

तुम
पा गए
एक दूसरे को

* शीर्षक संपादक द्वारा

अँगों में,
रंगीन
हो गए
एक दूसरे के
रंगों में

10-4-1971

यही है वह दिन*

घोसलों से उड़ आए
रोमांचित खुले मैदान में
कबूतरों के जोड़े
झुंड के झुंड अब जहाँ करते हैं गुटरगूँ
पंख से पंख सटाए हुए पूरे
एक दूसरे पर हो रहे निछावर

खुश है
परम प्रकाशित धूप
दिल और देह को दिगन्त तक खोले—
ब्याह गए सूरज और धरती के मिलाप से
लद गए खड़े पेड़ों के बसन्ती वशीकरण फूलों से
दूधिया दर्पण में
सर्वांग रंगीन और अनञ्जित

मुग्ध है अनंत आकाश का नीलाम्बरी सुदर्शन पुरुष
चूम-चूमकर
प्रकृति के रंगीन रस भरे अंगों की प्रसन्न पंखुरियाँ

खुल गए
द्वार-पर-द्वार
सौन्दर्य के इस पार-उस पार
संस्पर्श की हिलोरे मारती
संवेदनशील हवा से

* शीर्षक संपादक द्वारा

यही है वह दिन
जिसके इन्तजार में जीता रहा हूँ मैं
भीतर से भभकते
और बाहर से स्थिर प्रशान्त
और अब, आज,
जिसे पा लिया है मैंने
मानवीय अस्तित्व के मधुरिम-बोध में
मर्त्यलोक में चिरंजीवी रहने के लिए
हर्षोल्लास के साथ

12-4-1971

अलग का व्यक्तित्व*

अलग है
अलग का व्यक्तित्व
जहाँ दूसरे व्यक्तित्व
गलत दिखते हैं

5-6-1971

मेल और मिलाप*

मेल
और
मिलाप
हृदय से होता है,
तोप
और तलवार से
न हुआ है—न होता है

5-6-1971

* शीर्षक संपादक द्वारा

नारियल के पेड़*

नारियल के पेड़,
दंडी देह,
जोगी-जटा खोले,
गए ऊपर,
उठे ऊँचे-गगन छूते
खड़े
गाड़े जड़ें
घेरे खुली छत को,
हवा खाते,
हरहराते,
जय-विजय का जाप करते,
अंध तम से युद्ध करते,
यामिनी को कामिनी-सा सिद्ध करते,-
नहीं थकते-नहीं थकते,
पत्तियों से उलट जाते-पलट जाते,
हुलस जाते,
गृही जैसे पुलक जाते,
हरे रहते-हरा करते,
चेतना से भरा करते,
परा-अपरा अप्सरा की पीर हरते

18-21-1971, मद्रास

गुहा में*

गुहा में
गहरे खो गया है शरीर
खाली कुरता बाहर लटकता है
हुक्का पी रही है हवा
छोटे-बड़े बादल गुड़गुड़ाते हैं
केन के पानी के

* शीर्षक संपादक द्वारा

बुलबुले बुदबुदाते हैं
हृदय में चलता है
हुकुम का एक्का
सड़क पर
साइकिल अब नहीं चलती
किलोल करती है कमंडल में
कुंडलिनी काया
कुंडलिनी नहीं जगती।
नागपंचमी नशे में बेहोश किए हैं
सिर पर खड़े पैर
काँच की चूड़ियों में फँसे हैं
रेत में गड़ी मुट्टियाँ
योगाभ्यास करती हैं

9-7-1971

पहिए*

पहिए
चलते हैं
चलते-चलते
फिर वहीं पहुँचते हैं
इन्तजार में जहाँ
चल पड़ने को
तुले रहते हैं
टूटते-टूटते जब तक
टूट नहीं जाते
भूगोल की रगड़ खाते
समय से टकराते

5-8-1971

* शीर्षक संपादक द्वारा

देश का दुर्भाग्य*

हवा बाँधे बादल
हुक्का गुड़गुड़ाते हैं,
समय को
चीरे डालती है
बिजली

आदमी
अब भी
हठयोग करता है,
शरीर को
उलटाए,
पाँव
सिर पर अपने उगाए,
मुट्टियाँ
जमीन पर श्वासन में लिटाए
मौत की भीड़
मेला देखती है स्वर्ग का
चक्कर काटता है
देश का दुर्भाग्य
वायुयान में

12-8-1971

उड़ गया कबूतर*

उड़ गया कबूतर
हाथ का
पड़ गया परदा
तम की
रात का

20-8-1971

* शीर्षक संपादक द्वारा

दिन का दंगल उदस गया है*

दिन का दंगल उदस गया है
चलते-चलते चारण चरखा ठहर गया है
सूरज का मुख-
दुनिया का रुख बदल गया है
शाम सुनहली कोलतार में डूब गई है
बंद हुए चौमुख दरवाजे
बाहर भालू अगम खड़ा है
सन्नाटे के बाल फुलाए,
क्या मजाल जो कोई पत्ता हिल ही जाए,
चले हवा अपना चंचल लँहगा लहराये,
और रोशनी
जुगनू वाले दिए जलाये

24-8-1971

बंद आँखें : खुली आँखें*

बंद आँखे
नींद में
देखती हैं
सुबह का सपना
खुली आँखें
धूप में
देखती हैं
रात की रचना

26-8-1971

तुम झूठ बोलते हो*

तुम
झूठ बोलते हो

* शीर्षक संपादक द्वारा

जब
सच बोलने का साहस बटोरते हो
मगर
साहस हार जाता है
और शब्द
जो तुम बोलते हो
जमीन पर गिर पड़ते हैं
कोयले की तरह
बुझे-बुझे
और
लगी रह जाती है
मुँह के चारों ओर तुम्हारे
एक कलौंछ
देखकर जिसे
घृणा होती है तुमसे
और शर्म आती है
तुम्हारे आदमी होने पर

1-9-1971

न्याय-अन्याय*

न्याय
मिले, न मिले
अन्याय तो
अवश्य मिलेगा
उलटफेर से, चलती अदालत में।

1-9-1971

हम तो*

हम तो
नहीं चलते उस सड़क पर

* शीर्षक संपादक द्वारा

जिस पर चलते हैं और लोग
बदनाम हुए लोग
और अन्ततोगत्वा अनाम हुए लोग।

हम तो
नहीं करते उस करम को
जिसे करते हैं शैतान हुए लोग
और अन्ततोगत्वा मसान हुए लोग।

1-9-1971

हैरान जिन्दगी*

नट और नटिन
नाचते हैं
धुआँ का नाच
हैरान जिन्दगी
नाश और नशे की चिलम पकड़े
धुएँ पर धुआँ पीटती है
मौत की मुहब्बत में फँसा आदमी
अवैध कामशास्त्र पढ़ता है
और रामनामी सड़कों पर मौज से
मदन की मुद्राओं का प्रदर्शन करता है
ज्ञान न ध्यान रत्ती भर फिर भी पंडित गुमानी
आदमी को कुत्ता
और कुत्ते को आदमी समझते हैं
मुखर नहीं होती सच की जबान
जहाँ मुखर होना चाहिए झरझराते झरने की तरह
चुप नहीं रहती है मन की मैना
जहाँ चुप रहना चाहिए, अवाक दर्पण की तरह

1-9-1971

* शीर्षक संपादक द्वारा

गाँव के खूँटे*

गाँव के खूँटे
शहर के मुहल्लों में
बहुत गहरे गड़े
वहाँ के सींगिया साँड़ आकर यहाँ बैतहाशा लड़े

सड़क पर चले—
तो, उपीछते चले—
महीन मर्यादाओं का सुगंधी परिवेश
इरादतन तोड़ते चले
नए आए गाँव के गोबरगंधी गणेश,

देह से पुष्ट और बलीन बोंगिए
शहर की खोपड़ी पर
हूदे घालते हैं,
प्रभुत्व के प्रदर्शन में
मौत की मर्दानगी उछालते हैं
यही जब कोप में
कलेजी खाया मुँह खोलते हैं,
मोतियों के बजाए—
विषाक्त गालियाँ रोलते हैं,

माथे में लगाए हैं
जो टीका देवी-भवानी का
जीतते चले आए हैं उसी के भरोसे पर
आज तक मोरचा जिन्दगानी का

कंठ से लटकाए हुए कंठी बने हुए हैं पावन
मात तो इनसे अब भी वैसे खा सकता है रावन
न्याय यह कचहरी में लेते हैं
झूठ से चलाई नाव कागज पर खेते हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

जंग के दुश्मन
और जवानी में औरत मारते हैं
पुरखों की पूरी पीढ़ी को काम और क्रोध से तारते हैं

सुबह से शाम तक
समय का सोना स्याह करते हैं,
सभ्यता और संस्कृति की दुनिया को तबाह करते हैं
ये नहीं—
इन्हें देखकर हम आह भरते हैं,
जीवन जीने का गुनाह करते हैं

4-9-1971

काटो अपने ओठ*

न साँड़
न सीढ़ी
गुमसुम
बैठे
चूमो
चाटो
काटो
अपने ओठ

5-9-1971

ढलते सूर्य की ढलती देह में....*

इस उम्र में अब भी
ढलते सूर्य की ढलती देह में
तुमको जिलाए और अपना बनाए
जी रहा हूँ मैं जीने में तुम्हारे
तुमसे लव लगाए

* शीर्षक संपादक द्वारा

मन में तुम्हारे मन अपना रमाए
सब कुछ भूला
इन्द्रियातीत होकर तुम्हारे संसर्ग में फूला

12-9-1971, रात

ईद मुबारक*

हमको,
तुमको,
एक-दूसरे की बाँहों में
बँध जाने की
ईद मुबारक।

बँधे-बँधे,
रह एक वृत्त पर,
खोल-खोल कर प्रिय पंखुरियाँ
कमल-कमल-सा
खिल जाने की,
रूप-रंग से मुसकाने की,
हमको,
तुमको
ईद मुबारक।

और
जगत के
इस जीवन के
खारे पानी के सागर में
खिले कमल की नाव चलाने,
हँसी-खुशी से
तर जाने की,
हमको,
तुमको
ईद मुबारक।

* शीर्षक संपादक द्वारा

और
समर के
उन शूरोँ को
अनुबुझ ज्वाला की आशीषेँ,
बाहर बिजली की आशीषेँ
और हमारे दिल से निकली—
सूरज, चाँद,
सितारों वाली
हमदर्दी की प्यारी-प्यारी
ईद मुबारक।

हमको,
तुमको
सब को अपनी
मीठी-मीठी
ईद-मुबारक।

21-11-1971

अपनी ही ठठरी में सूखे हैं*

लम्ब पर लम्ब
खड़े कर दिए
हमने
पेट पर
लकीरों के,
यश की शहतीरों के,
फिर भी हम
बेघर और भूखे हैं
अपनी ही ठठरी में
सूखे हैं।

31-11-1971

* शीर्षक संपादक द्वारा

मैं जीता हूँ तुमको*

मैं
जीता हूँ तुमको
तुम्हारे साथ,
हाथ में लिए तुम्हारा हाथ,
नहीं पढ़ता कोई वेद
नहीं करता खेद

31-11-1971

राह से मिली राह*

राह से
मिली राह
बना चौराहा
जहाँ से हुआ
आवागमन—
चाहा—अनचाहा;
बल हो तो
कोई तोड़े
चौराहा,
और फिर सैर करे
नए देश की
नए तारों की
मौर धरे
सिर पर।

7-3-1972

ट्विस्ट करती है नागिन बिजली*

ट्विस्ट
करती है

* शीर्षक संपादक द्वारा

नागिन बिजली
तड़क रहे बादलों की
देह से निकली ।

तमांध हरती है
दिगम्बरी ईशिता
शिव की
ईप्सित उजाले से,
चर-अचर में
उत्प्लवन करती हुई

चमत्कार करती है
चेतना
पवन और पानी को
प्रदीपित करती हुई

कृतांत
भोगती दुनिया
सकाम प्रमोदन करती है
प्रकाश के संसर्ग में
दृश्य
प्रतिदृश्य में
प्रतिभासित

14-3-1972, बाँदा

कबीर*

कबीर ने
बखिया उधेड़ी है
राम और रहीम के
अंधे बंदों की

* शीर्षक संपादक द्वारा

मारी,
जब मारी है उन्होंने
म्यान से खिंची तलवार
धड़ल्ले से

न डरे हैं डर से वह
न होहल्ले से
करते-करते कर गये हैं
वह काम
जो करते-करते कर न सके
एक भी महात्मा
या महामान्य

शिलाएँ तोड़ती
बहती है
कबीर की बानी
हृदय से उमड़कर
प्रवहमान है
उसका दमदार पानी

19-3-1971, बाँदा

विपर्यय*

आईने में
मुँह देखता है
घर का चाँद,
पीछे पीछे दुनिया
रात के
कम्बल में
कैद पड़ी है।

तड़पती है
एक मछली

* शीर्षक संपादक द्वारा

विकर्षण से आहत
अपने पानी के
समुद्र में।

सजा
भोगते हैं
प्यार के सपने
राख में दबे
निरुद्धार।

11-6-1972, मद्रास

आदमी मरा नहीं*

मैंने
शव लाद दिया
शब्दों की पीठ पर
मोटर से कुचल गए
मानुस का
और फिर
चला गया घर
शान्त हुआ मन
जैसे कुछ हुआ नहीं
आदमी मरा नहीं,

12-6-1972, रात : 9.30 बजे, मद्रास

सूरज खींच रहा है फोटो*

सूनी सड़क,
अकेली युवती
बेलबाटम
कुरते में निकली,

* शीर्षक संपादक द्वारा

सूरज
खींच रहा है फोटो
हर क्षण
हर मुद्रा की उसकी,
'क्लोज़-अप' में
बस वही-वही है :
कटे बाल की-
बीस बरस की-
बड़ी-बड़ी आँखों से हँसती युवती
और नहीं है कोई।

24-6-1972, मद्रास

तुम्हें बधाई*

तुम्हें बधाई
देश तुम्हारे साथ चला
नदी दिशा का
नई दृष्टि का
अनबुझ अगिन जलाए दिल में
दीन दुखी के लिए दहकता
साथी-राही सूरज निकला
महाकार तम-तोम जला

25-6-1972, मद्रास

वह पिनाक था परम्परा का

जो धनुष
राम ने तोड़ा,
वह पिनाक था
परम्परा का,
उसे राम ने तोड़ा,

* शीर्षक संपादक द्वारा

भू-कन्या
सीता को ब्याहा;
ब्याह सके थे
जिसे न कोई
उसे तोड़कर
राज-वंश के योद्धा

तब
उस युग में
परम्परा ही शिव थी
इसीलिए वह
धनुष बन गई शिव की

जनक
प्रकृति से विद्रोही थे
परम्परा के
इसीलिए प्रण ठाना।
तोड़ो धनुष—
ब्याह लो सीता—
जो जमीन की सादर बेटी
यह सच बात
आज भी सच है :

तोड़ो
तोड़ो
परम्परा को
बनो राम
ब्याहो
धरती की बेटी सीता।

27-8-1972, रात

मैं और तुम*

मैं
हूँ मैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

और
तुम
हो तुम
और
मैं और तुम
सर्वनाम हैं
आदमी की संज्ञा के
जिसका अस्तित्व
विज्ञान और
तकनीक से जुड़ा है

19-11-1972, रात

न कुछ से कुछ*

न कुछ से
कुछ
जैसे मैं
जैसे तुम
फिर
कुछ से
न कुछ
न मैं
न तुम
फिर
कुछ-न-कुछ
जैसे सब कुछ :

फूल
पत्ती
पेड़
दुनिया
दरिया

* शीर्षक संपादक द्वारा

देश
राई
रत्ती
चींटी
शेर
सूरज चाँद सितारे मेघ

19-11-1972

समय और आदमी*

समय ने
खो दिया
आदमी का
नाम और पता
न
तार दे सका
न खत
कि
जाए
उसको बचाए
खतम होने से पहले

21-11-1972

हिप्पी*

हिप्पी
गाँजा
भाँग
शराब
कीर्तन
पूजन
भोग-

* शीर्षक संपादक द्वारा

विलास
दाढ़ी
लम्बी
केश-
कलाप
जितना
जो है
उल्ल-
जलूल
सब है
फर्जी
तुच्छ
छलाव

15-12-1972

सिफारिश मुरदों की*

सिफारिश
मुरदों की
मुरदों से होती है
जिन्दगी
रोज-रोज
मरघट में रोती है।

15-12-1972

निक्सन*

बड़े खौफनाक लगते हो तुम
गुस्साए
खून में नहाए निक्सन
पैर से दबाए खड़े
दुनिया को।

21-12-1972

* शीर्षक संपादक द्वारा

गलतबयानी*

ठीक है
सब कुछ ठीक है
दुनिया में
उसने कहा
जो पैसों के पहाड़ पर चढ़ा
स्वर्ग में पहुँचा
जमीन का युद्ध नहीं देखता।

23-3-1973

निर्धन का मन*

निर्धन का मन
तब सूना था
अब सूना है
वहाँ न गाई
कल की कोकिल
तरुणाई की
गंध सुगंधित
अमराई की

वहाँ न
वीणा बजी सुहाई
शब्द-शब्द की
सधे हाथ की
वहाँ न
झूली-नाची कजली
गंध मोह की

वहाँ न चमकी
चित्त चीरती
चंचल चपला

* शीर्षक संपादक द्वारा

वहाँ न
बैठी
भूमि-भामिनी
हरित अचला
वहाँ न
फूले फूल
कंज के
वहाँ न प्रकटी
शरद शारदा
खेत खेत की

27-3-1973

जेठ का जुल्म*

आग लगी है
सिर के ऊपर चढ़े सूर्य में
जेठ का जुल्म
जमीन की जवानी जलाए है
प्यासा खड़ा है
दिन का सूखा पहाड़
ओस के आसरे में
गह्वर मुँह बाए
मेघ का नहीं
ताप का तपा पानी
रेत पर रेंगता
सिसकता है

25, 26-5-1973

अंधे बादल*

बिना आँख के
अंधे बादल

* शीर्षक संपादक द्वारा

आसमान में चढ़े चले जा रहे—
चले जा रहे एक-दूसरे को पछियाए :
धरती उनको
खींच न पाई—नीचे अपने पास न लाई,
असफल हुआ गुरुत्वाकर्षण;
बेपानी है
पानी की रितु,
बूँद-बूँद के लिए
धरातल में गोहार है

22-6-1973

श्री सुदामा पाँडे 'धूमिल' की 10/2 की मृत्यु का समाचार पढ़कर*

संसद से
सड़क तक
कीर्तिमान गरजा सागर
सूर्य की आग उछालते

तुम्हीं
तुम दिखे
लोक-मानस के दर्पण में
फेफड़ों के पंचर जोड़ते
हवा भरते
भीड़ को
आगे ठेलते

उठा ले गया
अब
तुम्हें महाकाल
अस्पताल के बिस्तर से
तड़पता छोड़कर पीछे

* शीर्षक संपादक द्वारा

लोक
और आलोक का कुनबा

13-2-1974

बेजा एहसास*

जिन्दगी में
जहाँ भी
जिस तरह लोग रहते हैं
गन्दे नाबदान की तरह
निरन्तर बहते हैं,
आदमी होने का
बेजा एहसास करते हैं
दुर्गन्ध के
माहौल में
दिन-रात कलपते हैं

2-9-1974

सौन्दर्य में सराबोर*

तुम हो
नदी में खिला
आग की देह का
कमल-कोमल
हृदयंगम सूर्योदय
सौन्दर्य में
सराबोर
आग को जी रहा मैं
नदी के नाद में
तुम्हारा
संलाप सुनता हूँ,

* शीर्षक संपादक द्वारा

देश
और काल को
तोड़कर, अनन्त का
अनालाप बुनता हूँ।

1-11-1974

मानवेतर होने का भ्रम*

बाहर से विलग
भीतरी मैं,
सम्पर्कहीन
असम्पृक्त मैं—
अनात्म की अभिव्यक्ति
अगोचर
इकाई है,
जो न भव है
न अभव,
सिर्फ एहसास है
व्यक्त और
अव्यक्त के
बीच का;
इसीलिए
मानवेतर
होने का
भ्रम है।

19-11-1974

नदी*

पहाड़ के तले
नदी,
जमीन में बिछी

* शीर्षक संपादक द्वारा

लोट-पोट हुई, पत्थरों पर,
दूध-दूध हुई जाती है
फेन फूल हुई-हुई
मत्त खिलखिलाती है;
धार-धार धूप हुई
लोक में अरोक
ओज-ओप छहराती है
रूढ़ियाँ ढहाती हुई
आगे बढ़ जाती है

27-1-1975

रात हुए सो गए*

परात में पड़ा
पानी
आकाश का सूरज लिए
गरम भाप बना
और हम
पेट में पानी लिए
आँख-आँख में सूरज लिए
जिस्म
और जवानी से
दम-दम दहके,
कुरसी पर बैठे
झुके हुए,
सूरज के डूबे पर
बुझ गए।

हमने कुछ किया नहीं
हमने कुछ जिया नहीं
रात हुई
सो गए

* शीर्षक संपादक द्वारा

द्वन्द्व और दुनिया से
खो गए।

29-1-1975

रंगीन तितलियाँ*

उड़ती-फिरती हैं
इधर-से-उधर,
चारों ओर
रंगों के फरेब में फँसी
नागरिक तितलियाँ
शहरी शरारती आँखों के फूलों पर
मुग्ध मँडरातीं,
वासना के वसन्त में
कामातुर इतरातीं;

परेशान है जबकि हमारी
शोषित-शापित
चौहत्तर वर्ष की बूढ़ी सदी
मानव मूल्यों को रसातल जाते देखकर

4-2-1975

पैसा*

सिर पर चढ़ा पैसा
सिद्ध और सर्वशक्तिमान है
जमीन पर गिरा आदमी
दीन हीन परेशान है।

4-2-1975

फूल हैं*

फूल हैं
कि अब के बसन्त की हवा में

* शीर्षक संपादक द्वारा

थरथराते हैं ।
खिलते-खुलते भी
मंद मौन
प्रकाशित
मुसकुराते हैं ।

6-2-1975

घूसिये*

जी,
आप नेक
और निहायत शरीफ हैं
क्योंकि
आप
पेट भर घूस लेते हैं,
और काम बढ़िया कर देते हैं
न पकड़ में आते हैं,
न सजा पाते हैं ।

8-2-1975

अंधे*

क्योंकि
आप
बार-बार गढ़े में गिरते हैं
समय के सूरज से
आँख मूँदे रहते हैं
रुपए को
माई बाप कहते हैं

10-2-1975

* शीर्षक संपादक द्वारा

परोपजीवी*

फूल
चुनते हैं
बेझिझक
लोग जो खाद नहीं देते
पेड़ों को,
दूसरों पर जीते,
आदमी की शक्ल में
चीते हैं।

20-2-1975

पेड़ के पुरखे*

जंगल खोदते हैं युवक
अंधेर के अंधरे के,
पेड़ के पुरखे
जमीन में डाढ़ जैसे गड़े
हिलते-हिलते भी नहीं गिरते

20-2-1975

उसकी हँसी*

उसकी हँसी
घुल गई
हिमालय की हीरक हँसी में
और मैं
धूप की भरी
नदी से उठ-उठ कर
निनादित
दौड़ने, घूमने
और

* शीर्षक संपादक द्वारा

चलने लगा
दिगन्त तक फैली वनस्पति को

9-3-1975

वे तीस साल*

कुछ नहीं किया मैंने
अदालत में
सिवाए बकवास के
मेज और कुर्सी को सुनाए हैं मैंने
कल्ल के कथानक
लोमहर्षक वीभत्स भयानक
दिल और दिमाग से उँडेले हैं मैंने
गरम ठंडे आँसुओं के सागर
बेदर्द पत्थर फर्श के
न पसीजे
साल-पर-साल जीवन के-
तीस साल चले गए
सचमुच वे तीस साल
मेरे तीस बेटे थे
न्याय की लड़ाई में मारे गए होम गए
अब तक कुछ हुआ नहीं
छै की दहाई अब शून्य की इकाई लिए
बैठी है मेरे पास
मेरे लिए।

10-4-1975

गड़गड़ाते गगन छाए मेघ*

गड़गड़ाते,
गगन-छाए
मेघ
सूरज को छिपाए, घनघनाते;

* शीर्षक संपादक द्वारा

पग,
पवन के
सम्भ्रमण के,
तड़ित-ताड़ित, डगमगाते;
व्यंजना में चिन्तना के
खड़े पादप-
आम-इमली और महुवा-
दौंगरा में
भी जुड़ाने को
चिलकते-छटपटाते
टिंहुकती,
टेरती, उड़ती टिटिहरी
चीरती अविराम नभ को;
काल के कण-क्षण
सुबुकते,
दर्दमर्दित तिलमिलाते;
ललक-लोचन
ग्रामवासी
मेघ मंडल को
निरखते
ओठ सूखे, तप्त खोले,
विकल झुलसे, बुदबुदाते
व्योमवासी
वारिधारा को
विनय से-प्रार्थना से
अर्चना से झरझराने को
बुलाते।

2-6-1975

ऊपर को उड़ा*

ऊपर को उड़ा
और

* शीर्षक संपादक द्वारा

नीचे
फिर आ गिरा
अपनी जमीन
पर चला-फिरा
आदमी

30-6-1975

जोगी*

भीतर के देश में
जीता है
जोगी
बाहर के देश में
हारा है
जोगी।

8-9-1975

सबरे की आग*

सूरज के साथ में
सबरे की आग है
पूरब में पैदा हुआ जीवन का राग है
पंखों के उड़ने का अम्बर में नाद है
कोयल की बोली से झरता प्रमाद है
किरणों के मेले में गाता प्रकाश है
बीना-सा बजता हुआ
मौसम का
श्वास है।

8-10-1975

* शीर्षक संपादक द्वारा

समय को पी रहा मैं*

समय को पी रहा मैं
पानी की तरह
जी रहा मैं जमीन में पड़ा
समय भी पी रहा मुझे
पानी की तरह
जी रहा समय
जमीन में पड़ा

2-11-1975

जीना*

जीना
यह नहीं हुआ
जीना
जिसको तुम
कहते हो
जीना ।
इशरत से
फितरत से
महफिल के
मौसम में
जीना ।

शोषण के
पोषण में
चक्कर से
मक्कर से
जीना ।

* शीर्षक संपादक द्वारा

इसे नहीं
कहते हैं
जीना।

17-11-1975, रात

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति*

पहले पहल जब मैं तुम्हारे चुम्बकीय क्षेत्र में खिंचा हुआ आया
तुम्हारी धुरी के चारों ओर मैंने जब
एक नक्षत्र की तरह
दिन-पर-दिन चक्कर-पर-चक्कर लगाया
मेरी चेतना में तुम्हारी चेतना का प्रकाश अवतीर्ण हुआ
मुझे दिखाई देने लगा
मेरा ही अपना मानवीय व्यक्तित्व परम संकीर्ण हुआ
नजर में अपनी ही लगने लगा मैं
संसार का पैदायशी बौना
भंग हो गई मेरे ज्ञान की
भाववादी भंगिमाएँ
जीवन जीने की मेरी
संस्कारवादी परम्पराएँ

20-11-1975, रात

आम की तरह बौराए हैं हम*

वैसे तो उदास हैं हम
कर्महीन
बदहवास हैं हम;
फिर भी
फगुनाए हैं हम,
इस उम्र में भी
आम की तरह बौराए हैं हम,

* शीर्षक संपादक द्वारा

चिरकुटिया चोला
बसन्ती बनाए हैं हम,
फूलों की बरात का
मौसम लाए हैं हम,
चिड़ियों के साथ
हर्ष से गुनगुनाए हैं हम,
फगुनाए हैं हम—
आम की तरह बौराए हैं हम

23-3-1976

मेघ नट हैं*

मेघ नट हैं,
नटी बिजली
व्योम की है नाट्यशाला।
कभी गर्जन—कभी तर्जन—कभी वर्जन
कभी मोहन—मंत्र मारण—
हृदय—हारण रूप—धारण
कभी नर्तन
कभी मंगल—वरण—वारण
कभी होता तम—
कभी होता उजाला।
दृश्य—अन्तर्दृश्य सब मैं देखता हूँ,
वारि—वर्षण में प्रहर्षित भीगता हूँ
चर—अचर के साथ मैं भी
पी रहा कादम्ब—हाला
जी रहा मैं प्रकृत जीवन
द्वन्द्व का निर्द्वन्द्व जीवन
क्या अचेतन?
क्या प्रचेतन?
क्या विवेचन?
प्राण में सब प्राणमय है,
यही मेरी जय—विजय है

13-4-1976, मद्रास

* शीर्षक संपादक द्वारा

शून्य-शून्य का योग*

निर्धन,
निरीह,
गर्हित गरीब,
शोषण के मारे सभी लोग,
पुराकाल से
शून्य शून्य का
जोड़ रहे हैं
योग

25-4-1976, मद्रास

तपित सूरज*

तीन दिनों से तपित सूरज बहक रहा है रोज-ब-रोज
दहके आवर्तों में दक्षिण दहक रहा है रोज-ब-रोज
म्लान हुआ मदरासी मुखड़ा, पंखुरियों का रोज-ब-रोज
सुना नहीं जाता है दुखड़ा जलपरियों का रोज-ब-रोज

5-5-1976, मद्रास

दक्षिण के परम प्रतिष्ठित देवता*

दक्षिण के यह
परम प्रतिष्ठित सभी देवता-
लोक-मानसी-श्रद्धा के दासों के स्वामी-
अभी आज तक,
काल-ब्याल की काट कुंडली,
सिद्ध, सुखी, समृद्धिशील हो,
जन-जीवन में जीते-जगते,
कीर्तिकाय में अमरकाय हो,

* शीर्षक संपादक द्वारा

पूजा और पुजापा साथे,
खड़े हुए हैं सब के आगे
व्याकुल भारत इन्हें पूजकर
भव-बाधा से जूझ रहा है,
श्रम-संकुल होकर भी, इनसे
जीवन की गति बूझ रहा है,

6-7 मई, 1976

ब्याही-अनब्याही*

ब्याही
फिर भी अनब्याही है,
पति ने नहीं छुआ;
काम न आयी मान-मनौती,
कोई एक दुआ;
आँखे भर-भर
झर-झर मेघ हुआ,
देही नेह विदेह हुआ,

7-5-1976

जनता खाना*

सौ पैसे में
'जनता खाना' खाकर मैंने जाना
अच्छा होता है ऐसे सरकार चलाना
जनवादी हो जाना
कम पैसे में भूख मिटाना
लोगों को राहत दे पाना

9-5-1976

* शीर्षक संपादक द्वारा

कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह*

कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह
पंचम स्वर में चढ़कर बोला सन्नाटे में नेह
अधजागी पलकें अकुलार्यीं
खुले नैन के द्वार
मंत्र-भारती-हृदय-देश में-
पहुँची पिकी-पुकार
कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह-पंचम स्वर में....

छूमंतर हो गया
सिसकता सरपीला संदेह
एक साथ मधु-पर्व मनाते गोही और अगेह
कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह-पंचम स्वर में....

ताप-तीर-तलवार चलाता
बीत गया है जेठ
कोकिल-कंठी बान चलाता
जीत गया है जेठ
कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह-पंचम स्वर में....

आज अयाचित मिला मनुज को
मनचाहा संगीत
प्रकृति पुरुष को, जिला रही है
पिला रही है प्रीत
कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह-पंचम स्वर में....

5-6-1976

सुबह की शहजादी*

सुबह की शहजादी
रंगीन रेशमी बाल खोले,
जिस्म से हसीन,

* शीर्षक संपादक द्वारा

आसमान से
जमीन पर
घूमने आयी,
मदरास को—
उसने
महीन मुस्कराहट
सिंधु को उसने
देहोल्लास दिया
इस तरह उसने
आम आदमी का दिल
हुस्न के फरेब से जीत लिया

7-6-1976, मद्रास

धूप के बरजिया घोड़े पर सवार*

दिन का जवान—
पुष्ट और पहलवान—
धूप के बरजिया घोड़े पर सवार
महानगर मदरास में बड़ी शान से आया
और आते ही उसने इसे अपने मातहत कर लिया
तेज और ताप से उसने
यहाँ के प्रत्येक आदमी को चमाचम कर दिया

7-6-1976, मद्रास

शाम की शरबतिया....*

रोशनी का
सोन-चम्पई लिबास पहने
शाम की शरबतिया
आकाश से जमीन पर आयी
महानगर मदरास में
रात हुए तक

* शीर्षक संपादक द्वारा

नाचते-नाचते दिल और
दिमाग में आदमियों के छाया
जादुई रंग-रूप से समायी
मैंने उसे देखा
और भेंटा भी
लेकिन अब लोप हुयी
शरबतिया
रात के अँधेरे में डूब गई दुनिया।

8-6-1976, मद्रास

रूप और रंग के पखेरू*

प्रसन्न हैं
प्यार के पंख फैलाए
रूप और रंग के पखेरू
उड़ान से
जमीन और आसमान का
फासला नापने में।

8-6-1977, मद्रास

हर्ष का हंस*

हर्ष का हंस
दूध पर तिरता है
इस पर सवार
भूमि की सरस्वती
काव्य-लोक में
विचरती है

8-6-1976, मद्रास

काठ का उल्लू बोलता है*

आदमी नहीं
काठ का उल्लू बोलता है

* शीर्षक संपादक द्वारा

जब वह मुँह खोलता है
सच और झूठ नहीं तोलता है
यही उसकी भूल
और खता है
दुनिया को इस बात का पता है

9-6-1976, मद्रास

दाब में धूप को दबाये*

दाब में धूप को दबाये,
सम्पूर्ण जिस्म सूरज का छिपाए,
ताप और दाप से डसे, सर्वांग परितापित सताए,
सिर पर छत्र की तरह छाए बादलों को देखकर
शाप से मुक्त हुए जैसे लोग
आप-ही-आप रोमांचित हुए हरसाए
पाँव की पीर पाँवों से निकल गई,
पंथ और पंथी की प्रीति
दृढ़ से दृढ़तर
अधिकाधिक हुई नई;
उमड़ें-बहें सींचें
चलते चरण चित्त की चंचल चाल से चारों ओर चले,
भूमि को चूमते, छोड़ते पद-चाप,
चाल का चक्कर पूरा करने में लगे, दिखाई दिए भले;
हाथ ने हाथ का साथ दिया,
कर्म का पुनरुद्धार दोनों ने मिलकर किया;
ताप और तप के, कल के तपे पड़े,
आज के नए नरम मौसम में नरमाए,
देह की डाल-डाल पर इनके पात और पक्षी चहचाहाए;
फूल और फूल की आँखें
रंग और रूप के दर्शन से खुलीं,
गंध और आनन्द से वृंत-वृंत पर अपलक तुलीं
मुझे भी इन बादलों ने छाप-छाप-छाप लिया

* शीर्षक संपादक द्वारा

मैंने इनसे,
और इन्होंने मुझसे
आह्लादित-विभोर-आत्म-संलाप किया

9-6-1976, मद्रास

आज का दिल डूबा*

आज का दिल डूबा
कल के विचार में,
अदेखे दृश्य के निराकार संसार में
होनहार का आकार वर्तमान में पाने के लिए
कल का मुकुट आज के माथे पर लगाने के लिए
कल की दुंदभी आज के माहौल में बजाने के लिए
कल का चश्मा
आज की नाक पर चढ़ाने के लिए
समय की यात्रा में
दूर तक निर्भय चले जाने के लिए
शताब्दियों से गिरे आदमी को
ऊपर उठाने के लिए

9-6-1976, मद्रास

इतवार में मदरास*

इतवार आया,
और मदरास का महानगर
धूपिया आलोक में नहाया
तनाव-शैथिल्य से मुक्त
मुसकुराया
चेतन चाल से चली हवा ने

* शीर्षक संपादक द्वारा

एक-एक पेड़
और एक-एक फुनगी को
मातृवत् गुदगुदाया,
फूल-फूल को चूम-चूमकर खिलाया
गंध-गंध की गाँठ वृन्त वृन्त पर खुर्ली,
और गान गान के पंख
प्यार-प्यार से फड़ाफड़ाए
दिन का बचपन प्रमोद के आँगन में खेला,
रंग और रूप का लग गया मेला
'स्वीपर' ने आज
अवकाश मनाया
घर का कूड़ा हमने बाल्टी में भरकर
नीचे पहुँचाया
हमने और गृहिणी ने कपड़े सबुनाए,
धूप में सूखने को फैलाए
हम भी 'हैंडपम्प' से
पानी भरकर नहाए,
और चाय के साथ हमने 'ब्रेड' भी खाई
'दूरीवान' से
प्रधानमंत्री का बयान आया
'हिन्दू' अखबार ने हमें बताया
रूस और भारत को हमने
एक दूसरे का
पक्का हमदर्द पाया,
दो पहर गए
हमने बहू का बनाया
भोजन 'पाया'
बेटे के बेटों को हमने
प्यार किया, फुसलाया;
शाम तक बुढ़ापे को हमने झुठलाया
मदरास के मौसम में हमने
आज का इतवार इस तरह बिताया-

13-6-1976, मद्रास

यहाँ भी औरतें*

यहाँ भी
औरतें
आदमी के
आदिम पुंसत्व को
समर्पित
बंदिनी गृह-लक्ष्मियाँ हैं;
देखने में देवियाँ
सौन्दर्य की
मूर्तियाँ हैं;
वास्तव में
दैहिक अनुभूतियाँ हैं

13-6-1976, मद्रास

यहाँ भी आदमी*

यहाँ भी
आदमी
औरतों का
शील भंग करते हैं
देह की डाल का
झूला झूलते हैं,
अंग
और अनंग की
लीला में लीन
एक ही अकूल में
पैरते-डूबते
एक हुए
रीझते-सीझते हैं

14-6-1976, मद्रास

* शीर्षक संपादक द्वारा

यहाँ भी लोग*

यहाँ भी
लोग और लोग हैं
आम और खास,
आदमी की तरह के आदमी
एक-दूसरे से
अलग-थलग,
रहते हुए भी
हाथ की तरह पास-पास,
धुनते हुए
अपनी-अपनी कपास

14-7-1976, मद्रास

धर्म की ग्रन्थियाँ*

उत्तर से अधिक
दक्षिण में
धर्म की ग्रन्थियाँ हैं
ग्रन्थियों का जीवन
कर्मन्द्रियों से जीते हैं आदमी
जीते आदमियों के
जी और जहान में
पैसा नाचता है,
पैसे के रूप में
भैरव का भैंसा नाचता है,
नाच में
'अनहद' नाद का ढोल बजता है,
परलोक की ठगी से
कहीं कोई नहीं बचता है

15-6-1976, मद्रास

* शीर्षक संपादक द्वारा

गलफुल्ले आम*

गोलाकार रूप के
रसीले गलफुल्ले आम
हल्दिया-गुलाबी
और गुठली-गठीले हैं;
रुचिकर रस के शहददार,
मंद-मंद मोहक महकदार,
दाब-दाब दबते
निचुड़ते हठीले हैं;
अमरस देते
और तृप्त कर देते हैं,
हमको रोमानी आम
मुग्ध कर लेते हैं

16-6-1976, मद्रास

सागर*

उद्धत उछाल पर है आज
जल-ज्वार सागर का
अन्तर उबाल पर है आज
अनुदार सागर का
पीड़क प्रहार पर है आज
उद्गार सागर का
हिंसक प्रसार पर है आज
प्रतिकार सागर का

16-6-1976, मद्रास

बेगमपल्ली आम*

नाम से 'बेगम'
और जिस्म से अ-बेगम हैं

* शीर्षक संपादक द्वारा

अन्ध्र से आए ये
बड़े-बड़े बेगमपल्ली आम
देखने में दर्शनीय,
काया में कमनीय,
छूने में चिकने
और खाने में
मीठे
दलदार, और बे-गम हैं
अन्ध्र के
आये ये
बड़े-बड़े बेगमपल्ली आम

16-6-1976, मद्रास

मालगोवा आम*

देह के भारी
भरे भार के,
मोटे, मालदार,
मालगोवा आम,
अच्छे हैं
पयोधरी उभार के,
शस्य-श्याम
शाद्वली-सँवार के
मीठे, मजेदार,
और दलदार,
ओठ जैसे रसदार

16-6-1976, मद्रास

जाले*

दिल के बाहर
मकड़ी बुनती जाले

* शीर्षक संपादक द्वारा

पूछे बिना हमारे,
हमें हटाने पड़ते जाले
बाहर लगे हमारे
दिल के भीतर
उलझन बुनती जाले,
देखे बिना हमारे,
हमें हटाने पड़ते जाले
भीतर लगे हमारे

17-6-1976, मद्रास

छोटे-छोटे हाथ*

छोटे-छोटे हाथ
समय को नाप रहे हैं,
चलते-चलते पाँव बिछलते पथ को
चाँप रहे हैं,
कठिन क्रूर दुख-दानव का दल
सफल हुआ है

17-6-1976, मद्रास

मैं बच्चा हूँ*

मैं बच्चा हूँ
बड़ी उमर में भी कच्चा हूँ
कल की नींव गिराई मैंने
और
आज की चिलम चढ़ाई
आगम कल को आँख दिखाई मैंने
बस, नासमझी यही कमाई मैंने
इसीलिए तो

* शीर्षक संपादक द्वारा

मैं बच्चा हूँ
बड़ी उमर में भी कच्चा हूँ

17-6-1976

मर्द का बच्चा*

मर्द का बच्चा
औरत के जिस्म से मुहब्बत करता है,
जिस्म को कुश्ती लड़ने का अखाड़ा समझता है,
और जब उसकी मेहत-मशक्कत
औरत के पेट में फूलती है
तब उसकी पहलवानी और सिट्टी-पिट्टी भूलती है,
औरत को छोड़कर फौरन फरार होता है,
फिर बाप अपनी बेटी को
घर से निकालकर अनाथालय पहुँचाता है
मर्दानगी और मुहब्बत की
ऐसी-तैसी होती है
हमारे देश में
इश्क और हुस्न के साथ
आए दिन भँडैती होती है
हमारे देश में

19-7-1976, मद्रास

एक और दिन हुआ*

एक और दिन हुआ
तमाम दिन खोदता रहा आदमी एक और कुआँ
कुएँ में खोजता रहा पानी
अब पानीदार होने के लिए
मरते दम तक
जिन्दगी का बोझ ढोने के लिए

* शीर्षक संपादक द्वारा

एक और दिन हुआ
आदमी का मुँह फिर
हुआ धुआँ-धुआँ

19-6-1976, मद्रास

पेड़*

जंगल में जिए
और जंगल में पले हुए,
जंगल को घना
और जंगल को बड़ा किए
जंगल को जीते हैं
जंगल में चारों ओर
जंगल में खड़े हुए
जंगल में हरे हुए
जंगल में हर्ष के हजार हाथ
व्योम तक उठाए हुए
जंगल के जीवन को
काव्यमय बनाए हैं
आदमी को जंगल में
आदमी बनाए हैं

21-6-1976, मद्रास

रुष्ट हैं अन्न की देवी*

रुष्ट हैं
अन्न की देवी
अन्नपूर्णा
रिक्त है
पेट का
पोरबंदर
हड़ताल से

* शीर्षक संपादक द्वारा

खाली
खड़े हैं हम
जहाज,
लंगर डाले,
परिवार के
सिंधु में

28-6-1976, मद्रास

बादल आए गोल बाँधकर*

बादल आये
गोल बाँधकर
नभ में छाए
सूरज का मुँह रहे छिपाए
मैंने देखा :
इन्हें देख गजराज लजाए—
इनके आगे शीश झुकाए—
बोल न पाए
बादल आए
बरखा के घर साजन आये
जल भर लाए
झूम झमाझम बरस अघाये,
मैंने देखा;
प्रकृति-पुरुष सब साथ नहाए,
नहा-नहाकर अति हरसाए—
ताप मिटाए

25-7-1976, शाम : बाँदा

नदी की तेज धार*

बह रही नदी की तेज धार
जल बार-बार करता प्रहार

* शीर्षक संपादक द्वारा

उद्धत तरंग से दुर्निवार
कट रहा खड़ा ऊँचा कगार,
चल रहा क्षरण क्षण-क्षण अधीर

28-7-1976, बाँदा

गुट्टी की मृत्यु पर*

जान का जुगनू
जिस्म में बुता गया
जिस्म को
खा गई
मसान की लपटें
निःशेष हो गई 'गुट्टी'
दो बेटियों की माँ
उदास हूँ मैं
अँसुआई आँखों में
दिल का दर्द भरे

28-8-1976

[गुट्टी के आज सबेरे मरने पर (अस्पताल में)]

ईंट*

ईंट
पर ईंट
और
ईंट पर ईंट चढ़ी
और
कई-कई
खंड की-
लम्ब तड़ंग
इमारत
खड़ी हो गई

* शीर्षक संपादक द्वारा

बौने
और बीमार
हो गए
उसके विधाता
कर्मकार
निर्माता
कारीगर और मेमार

3-9-1976, बाँदा

गुलनार गुलनार हो गया आसमान*

गुलनार
गुलनार
हो गया आसमान
देखते-देखते इंसान के
चमत्कार
चमत्कार
हो गया जहान
देखते-देखते इंसान के
आलोक
आलोक
हो गया आत्मज्ञान
देखते-देखते इंसान के
संश्लोक
संश्लोक
हो गया हृत्-प्रान
देखते-देखते इंसान के

7-9-1976, बाँदा

तब मैं*

तब मैं
पेड़ और पहाड़ से भी

* शीर्षक संपादक द्वारा

अधिक ऊँचा
अंतरिक्ष तक पहुँच जाता हूँ
अपना घर अपना जग
सिर पर उठाए अपने
खड़ा हो जाता हूँ दृढ़
कि आया महासागर
घुटनों तक ही पहुँच पाएगा मेरे ।

18-9-1976

भिखारिन*

धँसी-धँसी आँखों से
धुआँ-धुआँ-धुआँ दिए
थके हुए पाँवों से चलती है
झुकी-झुकी
जीवन का अन्त छोर खोजती
द्वार औ' दुकानों की ड्यौढ़ी पर
पेट से पुकारती
सड़ी-गली भीख मिली
खाती है
मरी-मरी बोलती
दुनिया के दानव पर
हँसती है
कभी-कभी रोती है
कहीं नहीं होती है
देश की व्यवस्था में
दीन-हीन वर्तमान भोगती

18-9-1976, बाँदा

बबूल*

काल-दंड पर,
हरियाली का क्षत्र कंटकित साधे,

* शीर्षक संपादक द्वारा

पीले छोटे
फूल-फूल की माँस-पेशियाँ खोले,
हँसमुख बली बबूल खड़ा है
मेरे घर के सम्मुख,
धूप कुँवारी से आलोकित,
आरण्यक आक्रोश सरणियों को परास्त कर,
मानवीय गरिमा को मेरी प्रज्ञापित कर
मुझको मेरे इस बबूल से पुष्ट प्रेम है ।
सुधी-स्रोत मेरे जीवन का यही क्षेम है ॥
इसे न काटो,
कटु कुठार से मेरी काया कट जाएगी,
ध्वस्त, धराशायी होने की
मेरी घड़ी निकट आएगी ।

6-10-1976, प्रातः : बाँदा

रात की रानी*

रात की रानी
चन्द्रलोक से आ
मदरास में
चाँदनी-चाँदनी हुई
पूरे जिस्म से मुसकुराई
जमीन में जादू
और सागर में
जादू हुआ
गगन की रम्भा जीवन में
जी भर नाची
सागर ने लहराई लहरों से
मंद मधुर मृदंगम बजाया
महानगर ने
सौन्दर्य का महोत्सव
पूर्णमासी में मनाया

8-11-1976, मद्रास

* शीर्षक संपादक द्वारा

ठाकुरप्रसाद सिंह के आने पर*

आज आये
ठाकुरप्रसाद सिंह
मिलकर हुई आकस्मिक
अंतरंगी खुशी
बाग-बाग हो गया दिल
ज्ञात हुआ
आ गया बसन्त
मेरे ही मकान में
बिना बुलाए
अब महकते ही रहेंगे भेंट के फूल,
गड़ें चाहे शूल-
उड़े चाहे धूल

27-7-1977

चरणसिंह की जनता पार्टी*

चरणसिंह की जनता पार्टी
गरज रही है
वैसे जैसे
महाकाश में गरज रहे हैं
बिन पानी के मेघ
सत्य शील से विमुख विशेष
झूठी आशा के फैलाए केश।

28-2-1977

वृहत्त्रयी का आक्रमण*

आ गये पवन और पानी
एक साथ बिजली को लिये
रात के राज में अंधे हड़कम्प करने

* शीर्षक संपादक द्वारा

हिलने-डोलने और भीगने लगे
जमीन और आसमान
वृहत्त्रयी के आक्रमण में।

29-3-1977

पहली अप्रैल को पहली बार*

मेरी पत्नी ने आज मेरा जन्म-दिन मनाया,
पहली अप्रैल को पहली बार
उसने मुझे सुबह-सुबह गुलाब के दो फूल दिए
आरक्त पंखुरियों के महमहाए
नमस्कार में अपना सिर
मेरे सामने झुकाए

मैंने भी आज अपना जन्म-दिन मनाया
पहली अप्रैल को पत्नी के साथ पहली बार
गुलाब के दो फूल सूँघकर
उसके माथे को दो बार चूमकर,
बाहुपाश में उसको अपनाए
सौन्दर्य और प्रेम को एकात्म बनाए
मेरे पाँव, इस उम्र तक
अब तक कभी नहीं डगमगाए

1-4-1977

मैं नहीं चाहता

मैं
नहीं चाहता
तुम रहो तुम
मैं रहूँ मैं
और
बीच में हमारे

* शीर्षक संपादक द्वारा

बादल कड़के
बिजली चमके
और तुम
मुझे देखो
बुढ़ाते
और मैं तुम्हें देखूँ
बुढ़ाते

12-6-1977

दोस्त*

दोस्त
अब न रहे
दिन के-रात के-
पास के
हमारे
दर्द के सहारे

13-6-1977

लूक

चम-चम चमक
रही है धूप
गरम हवा की
चलती लूक
भीतर बाहर
आग लगी है
सूख रहा है
खून पसीना
उड़ती है
चौतरफा धूल

16-6-1977, दोपहर : बाँदा

* शीर्षक संपादक द्वारा

बाल-भिखारिन*

पतली दुबली
देह टिटिहरी
धूप-धूप में चलते-फिरते
नंगे पाँव
छोटी लड़की
छुटभैयों से माँग रही है
छोटे मुँह से
छोटी भीख
अपना छोटा पेट
खलाए
मुट्टी भर आटे
की ढेरी तसली में बैठाए-
हिमगिरि को इस तरह उठाए।

16-6-1977, दोपहर : बाँदा

मैं कुछ नहीं जानता*

मैं जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता
अब भी अपने बारे में-
तुम्हारे बारे में-
संसार के लोगों के बारे में
क्योंकि मैं भी
जानने की प्रक्रिया को नहीं जानता
और अगर जानता हूँ तो
कम ही जानता हूँ
और तुम भी नहीं जानते,
न संसार के लोग ही जानते हैं
क्योंकि मैं भी-तुम भी-तमाम दूसरे वे भी
सब मेरे समान जानते हैं
शताब्दियों से आदमी होते-होते-

* शीर्षक संपादक द्वारा

रंग-रूप बदलते-बदलते
एक से दूसरे युग में पहुँचते-पहुँचते
जिन-जिन रास्तों से होकर आए-गए-
उनमें खोते और अनजान होते गए
और अब एक नहीं-वही 'मैं' नहीं
वही 'तुम' नहीं
वही 'वे' नहीं
अनेकानेक हो गए हैं
जो 'मैं'-'तुम' और 'वे' से कतई अलग हैं
फिर भी मुझको
तुमको
उनको
जीना तो एक साथ है ही समानधर्मा होकर
दिक् और काल में
नई सृष्टि और नया सृजन तो करना है ही
आज के अब तक के विश्वव्यापी संवास को
पूरी तरह पराजित तो करना है ही
और तनाव को भेदकर
महान मानवीय मुक्ति
प्राप्त करना तो है ही
इसलिए अब हम सब
अपने-अपने व्यक्तित्व और अहं से
बाहर निकलें
जमीन से प्रवहमान
जल-भरी जवान नदियों के समान
और नई समता के
अपार समुन्द्र की ओर बढ़ें
ताकि सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्रों
को हरा-भरा करें
न दुख रहे-न दर्द;
न कुत्ते की मौत मरे आदमी
न बंधन और बेड़ियों से बँधे

सुख और समृद्धि का साम्राज्य
चारों ओर
फूले और फले
और सदा ही बसन्त-बहार रहे।

29-6-1977

सन्नाटे का लान*

सन्नाटे का लान
दूब की दरी बिछाये
ओस चाटता है, रात में
आसमान से झरी

पवन के पाँव पकड़े
चहारदीवारी में कैद
बाहर हुआती है,
देश की राजनीति
संसदीय लोकतंत्र के पक्ष में
डूब गए सूरज को पुकारती।

13-7-1977, बाँदा

रेल-इंजन*

लोहा
चिग्घाड़ता है
हाथी के बोल से
आए हुए इंजन की शक्ति में

वायुमंडल
काँप-काँप-काँप गया;
टूट-टूट-टूट गया-
काँच के टुकड़ों में
चारों ओर

* शीर्षक संपादक द्वारा

उड़े-उड़े आए
और
फैल गए
धरती के चारों ओर टुकड़े
आए और मुझ पर भी गिरे पड़े-
दर्द-दर्द देह हुई,
आत्मा कराह उठी।

15-7-1977

(घर के पास रेलवे स्टेशन है। रात 10.30 बजे इंजन की सीटी सुनकर)

बाबा तुलसीदास से*

सुनते हो महाराज-
रामजी के कवि-
रामायण के रचयिता-
हमारे बाबा तुलसीदास।
देश अब बदल गया है
भारत-भूखंड खंडित हो गया है
एक ओर पाकिस्तान बन गया है
दूसरी ओर बर्मा निकल गया है
बीच में खड़ी रह गई है अकेली रीढ़
यही है हमारा देश हिन्दुस्तान
धर्म-निरपेक्ष प्रान्तों का राज्य
यहाँ लागू है संविधान
यहाँ शासन पर सवार हैं कांग्रेसजन
और अब सवार हैं जनता के लोग
तब था मुगल दल-बल का शासन
अब न वे हैं-न आप
बच रहे हैं उनके खानदानी-कुटुंबी-वंशज
चाकर-चौबदार-चौकीदार
अहलकार और ओहदेदार
काम में लगे, चौवक्ता नमाज पढ़ते,
मुहर्रम मनाते,

* शीर्षक संपादक द्वारा

मर्सिया गाते
तहजीब के तजुर्बे आजमाते
गजलों में दिल जमाते और इश्क फरमाते

मुगलों के बाद आए अंग्रेज
उन्होंने चलाई अपनी रेल
भारत में रहा उनका अधिकार
देश हो गया परतंत्र
जनता हो गई दुबली
संस्कृति हो गई नकली
ज्ञान ने कर ली नौकरी
विवेक खाने लगा खली
शौर्य सो गया
अन्तरात्मा का देवता खो गया
जिसने भी की चूँचपड़,
वह गया पकड़
ऐसी लगी नागपाश की जकड़
कि जीना हो गया दूभर
और तब होने लगी बगावत
गाँव-नगर से निकले लोग
खेत खलिहान से निकले मजूर
विद्याविशारदों को आई अक्ल
और सबने किया एक साथ संगठन
तोड़ने लगे कानून
भरने लगे जेल
फिर क्रान्ति और शान्ति का हुआ उद्भव
और जग गई राजनीति की शक्ति
अन्ततोगत्वा हार गए अंग्रेज

यह है हमारा इतिहास
संक्षेप में हमारा विकास
सुनते हो महाराज!
इसे मैंने आपको बताया
नेहरू डिगरी कालेज की सभा में

मगर आप बोलते क्यों नहीं
इतिहास सुनकर मुँह खोलते क्यों नहीं
शताब्दियों के बाद भी वही मौन
वही धैर्य
आपके चेहरे पर विराजमान है
जानता हूँ कि
आपको राम की कथा प्यारी है
उसी उसी में आप डूबे हैं
हमारे लोक जीवन से ऊबे हैं

लेकिन देखता हूँ कि आप
न सुनकर भी शायद सुन रहे हैं
मेरे युग के इतिहास को गुन रहे हैं
और विचार-पर-विचार बुन रहे हैं
और मुझसे यह कह रहे हैं,
कि मैं कहूँ जो मुझे कहना है
अतएव मैं सुनाता हूँ

अपने युग की कथा
अपने देश के मानव-जीवन की व्यथा
जो मैं नहीं कह सकता सरकार से
फैले हुए अंधकार से

सुनते हो महाराज
हम जी रहे हैं
मनमानी धूप-हवा,
रूप चाँदनी
मुफ्त मिली पी रहे हैं,
पानी मोल लेते
और बिजली मोल लेते हैं
विद्या मोल लेते
और न्याय मेल लेते हैं
जन्म हो तो टैक्स अदा करते हैं
मरने पर मरने का टैक्स अदा करते हैं

काम-काज करने का-
चलने का-फिरने का-
आने का-जाने का-
खाना-दवाखाने का-
बेचने-बिकने-बिकाने का
खेत खरिहान का
टैक्स अदा करते हैं
सुनते हो महाराज,
ऐसे हम रहते हैं
आसमान सुनता नहीं हक को
धरती कुछ कहती नहीं हमसे
आग भी उठती और भभकती नहीं
लोक-जीवन दुर्गम है
नाग और नागफनी घेरे हैं
तक्षक ही तक्षक हैं
माँगने पर भीख नहीं, रोटी नहीं, कपड़ा नहीं,
सुविधा नहीं, साधन नहीं,
कुछ भी नहीं मिलता
शासन का, शिकायत पर,
आसन नहीं हिलता
फिर भी हम जीते हैं,
मरे सही, मुर्दा सही जीते हैं
कैसे? आप पूछते हैं
देखिए न, आपकी रामायण लिए रहते हैं
जितनी देर पढ़ते हैं
उतनी देर जीते हैं
दंड, दमन, दुविधा और दहशत से
उतनी देर मुक्त बने रहते हैं,
रामकथा कहते हैं,
मानव बने रहते हैं
लेकिन फिर, उसके बाद
बार-बार लूटपाट करते हैं
सत्य को कटार मार मौज से विचरते हैं

द्वेष, दम्भ, दुराचार, अनाचार
यहाँ-वहाँ-जहाँ-तहाँ
बुरी तरह करते हैं
हाँ, तो अब महाराज
अब बोलिए न, इसका क्या इलाज?
समझा मैं
आपकी मुखाकृति से जान गया
औषध पहचान गया
धर्म-धैर्य, मौन, ओम शान्ति ही
निदान है
दुर्बल का-दंडित का-खंडित का, शोषित का

30-7-1978, बाँदा

संभावित रचनाकाल-सहित और रचनाकाल-रहित कविताएँ

कुछ कविताओं के रचनाकाल के बारे में अनुमान की गुंजाइश का कोई आधार नहीं मिला—इनका रचनाकाल अंकित नहीं है। कुछ कविताएँ उसी वर्ष लिखी, रचनाकाल के साथ पाई गई कविताओं के साथ मिलीं; इसी को आधार मानकर इनका संभावित रचनाकाल दिया गया है। स्वीकार करना या न करना पाठकों के स्व-विवेक पर है—संपादक की ओर से कोई आग्रह नहीं है कि वे इसे स्वीकार ही करें। (सं०)

चाकर कवि

कवि पैसों का
चाकर होकर
पैसों पर दम तोड़ेगा
पैसों के
दातों के नीचे
अपनी हड्डी फोड़ेगा

आग
न उगलेगा
कविता से
वह मरघट में रोएगा
जिन्दा
जीवन के खेतों में
मुरदा आँसू बोएगा
मुरदा फूलों की पंखुड़ियाँ
बासी खुशबू
बेचेगा
रात
अँधेरी ओढ़े-ओढ़े झूठे सपने देखेगा
नंगे
भूखे प्यासे जग में
ऊबे
मन में
डूबेगा
मुरदाघर की
किन्नरियों के ओठों से रस चूसेगा
बंद पिटारे के अन्दर ही
सारी दुनिया
घूमेगा
बंधन

बेड़ी
हथकड़ियों को
बेतड़काए चूमेगा
कायर
कोढ़ी
और निकम्मा
शब्दों को शरमाएगा
पतझर के
आँगन में बैठा
भिक्षुक बनकर गाएगा

आज नहीं तो
कल निश्चय ही
चाकर कवि
मर जाएगा
मुक्त मही का
मुक्त महाकवि
सूरज को शरमाएगा

संभावित रचनाकाल 1951

अमरीकी साम्राज्यवाद का पेट फटेगा*

वह संस्कृति जो
वन संस्कृति की मात-पिता है,
बूढ़ी होकर
हमें विरासत अपनी देकर
भूतकाल में समा गई है
युवती बनकर
सपने में ही आ जाती है
दुखियारे जीवन के पास।
आँसू पोंछ
ताप श्रम हरकर

* शीर्षक संपादक द्वारा

थोड़ी मीठी शहद चाटकर
हमें मोह लेती है हँसकर।
हम उसकी सुधि में जीते-जगते रोते हैं,
जैसे कोई बिरही रोवे प्राण-प्रिया को।
वर्तमान के कठिन सत्य को
भूल-भूलकर
त्याग-त्याग देते हैं प्रतिदिन;
नहीं सिद्ध करते यथार्थ को
समर जीतकर
वर्ग-भेद का
क्योंकि अभी सामन्ती पगड़ी
युग के सिर पर धरी हुई है,
और छली साम्राज्यवाद भी
युग का शासन अगुआए हैं
और हमारी मति-गति दोनों बिकी हुई है
इसीलिए तो एटली, टूमन शूमन
देश-देश की राजनीति की
नाव खे रहे हैं उल्टी ही।
इसीलिए तो यह दुनिया अब
दो वर्गों में बँटी हुई है
एक वर्ग पूँजीवादी है
और दूसरा जनवादी है
और इन्हीं दो वर्गों में संघर्ष मचा है
पूँजीवाद लिए एटमबम
डालर की रोकड़ उधार दे
डालर एटमबम के बल पर
दुर्बल राज्यों को धमकाकर
चाह रहा है टूमैनी साम्राज्यवाद से
विश्व हड़पना
जनता को आर्थिक शोषण का जहर पिलाकर
मार डालना
राष्ट्रसंघ को अपना बूचड़घर करार दे
जनवादी रूसी प्रदेश की खाल खींचना।
और उधर शोषित शासित

अपने फौलादी पंजों के घन से
मार रहे हैं पूँजीवादी सरकारों को
एक-एक कर

और श्रमित का नया मोरचा
नहीं हराए हार रहा है।
एक युद्ध निश्चय ही होगा
दो संस्कृतियाँ टकराएँगी
अमरीकी साम्राज्यवाद का पेट फटेगा
सामन्ती पगड़ी उतरेगी
जनवादी संसार बनेगा
युग का शासन श्रमजीवी बलवान करेगा
फिर यथार्थ का सत्य तपेगा
जन प्रतिजन की आजादी का
स्वप्न फलेगा
फूलों के अंगों पर झूरी नहीं चलेगी
खून किसी का नहीं बहेगा
कवि गाएँगे निर्माणों के गीत अनूठे
और साथ ही कर्म करेंगे उत्पादन का
मुद मंगल का,
कोटि-कोटि जीवन हितकारी
अतः आज कवि इस कविता का
मानव से कहता है : दौड़ो
बीत गई संस्कृति के उर पर
नव संस्कृति की हलचल लेकर
और उसी से युग को भेंटो
युग को बरतो।

संभावित रचनाकाल : 1951

ज्वार और जीवन*

ज्वार खड़ी खेतों में ऊँची लहराती है
लम्बे पत्तों की तलवारें चमकाती है

* शीर्षक संपादक द्वारा

कहती है मेरे यौवन को बढ़ने देना
वीर जुझारू हरियाली से सजने देना
इससे पहले मुझे न छूना।

मेरी इच्छा है जीने की जीने देना
जी भर मुझको धूप रु पहली पीने देना
शाम सबेरे की होली में हँसने देना
मस्त हवा के हिलकारों में हँसने देना
इससे पहले मुझे न छूना।

आती हैं जो प्रिय बालाएँ आने देना
काली आँखों में मुझको बस जाने देना
पत्तों से चंचल आँचल हिल जाने देना
दिल से दिल मेरे उनके मिल जाने देना
इससे पहले मुझे न छूना।

गाते हैं जो हलधर गाना गाने देना
रसिया, कजरी, चौमासा उफनाने देना
कान्हा-राधा की बातें दुहराने देना
मेरी मेड़ों पर द्वापर को आने देना
इससे पहले मुझे न छूना।

कारी, धौरी गायों को कुहराने देना
हरियारी खाकर पूरी दुधियाने देना
चोरी चोरी मेरे ढिग तक आने देना
पागुर करती आशा से हुलसाने देना
इससे पहले मुझे न छूना।

कातिक तक तुम ताके रहना, नींद न लेना
फल पाने की अभिलाषा को दिल में सेना
मुझसे तुम गुच्छे के गुच्छे मोती लेना
अगहन में तुम मेरी खातिर हँसिया देना
इससे पहले मुझे न छूना।

संभावित रचनाकाल : 1952

वक्त ऐसा है...*

वक्त है ऐसा कि जैसे इन्द्रियों का रक्त है
और मेरी आयु उसमें डूबती-ही-डूबती ही जा रही है।
दर्द ऐसा है कि जैसे काटने का अस्त्र है
और मेरी साँस उससे टूटती ही-टूटती ही जा रही है ॥

संभावित रचनाकाल : 1957

प्यार*

प्यार कहीं पत्थर के भीतर है जमा हुआ,
सदियों से छिपा हुआ;
प्यार कहीं झरने से झरता है खुला हुआ,
पानी में घुला हुआ;
प्यार कहीं बहता है नदियों-सा कूल तोड़,
चलता है लाज छोड़;

संभावित रचनाकाल : 1957

सारथी*

मेरे लिए सूरज नहीं सूरज है
पूरब में निकला हुआ,
पच्छिम में डूबा हुआ;
और न ही
कोई एक यात्री है—
आया हुआ, गया हुआ,
आने पर जिसके मुझे हर्ष हुआ,
जाने पर जिसके मुझे शोक हुआ,
बल्कि एक दक्ष कुशल सारथी है

संभावित रचनाकाल : 1957

* शीर्षक संपादक द्वारा

प्रभात*

रात अपने खेमे को उखाड़कर चली गई,
पानी के बँधे हुए जूड़े में सरोज खिले
और नयी रोशनी जवान हुई।

संभावित रचनाकाल : 1957

प्यास और पानी*

एक

अब आओ न पत्थर को निचोड़कर निकाल लें पानी
न अब मिलता है जल
न अब बुझती है प्यास
बस मौन ही खड़ा है घर में नल
दमयन्ती के विरह में उदास
हाय रे यह हमारा अभाग्य
हाय रे यह हमारी बहरी गूँगी बेदरद मानुसपलती।

दो

आओ न अब हम तुम कपार पर अपने दे मारें
खरीदकर पाँच आने का पानी भरा नारियल
न अब मिलता है जल
बस मौन खड़ी है छुटा गई गाय की तरह बड़ी भारी खाली टंकी
हाय रे यह हमारा अभाग्य
हाय रे यह हमारी बेवफा मानुसपलती की बेवफा बेटी टंकी।

तीन

अब आओ न अपने सिर पर बिठाल लें
जटाजूटधारी शंकर की गंगधारधारी प्रस्तर मूर्ति
जिससे मिलता रहे हमको
जेठ में त्रयतापहारी गंगोदक

* शीर्षक संपादक द्वारा

और हम होते तृप्त-कछार की तरह हरे
न अब मिलता है जल
न अब बुझती है प्यास
बस मौन खड़ा है धूप से भरा भारी गरमागरम दिन
स्वयं जलता और सबको जलाता उदास दिन
हाय रे हमारा अभाग्य
हाय रे यह हमारी बेवफा मानुसपलटी का जानलेवा दिन

चार

आओ न अब
कंठ के अपने आतप्त झुलसे रेगिस्तान पर
कहीं से भगा लाई किसी क्षीण कटि नाजुक नदी के साथ नाचें
और उसका अनमोल गले का मोतियों का हार तोड़ डालें
और इस तरह पाएँ आब-भरपूर आब ।
क्योंकि अब मिलता नहीं हमें पानी
क्योंकि अब बुझती नहीं प्यास हमारी
हाय रे हमसे रूठी मानुसपलटी
-प्यार न करती बहरी निटुर मानुसपलटी ।

संभावित रचनाकाल : 1961

दर्द के हरे पेड़ में....*

खबर है :
कि दिक् और काल से
पलायन कर गया वह
दर्द के हरे पेड़ में
एक बुझी
लालटेन टाँगकर
नींद की गोद में नदी को सोया
छोड़कर

संभावित रचनाकाल : 1968

* शीर्षक संपादक द्वारा

अकेला पहाड़*

अकेला पहाड़
शताब्दियों का बोझ
उठाए खड़ा है
सिर के पेड़
तालियाँ बजाते हैं
जमीन का जमाना नहीं बदला

संभावित रचनाकाल : 1968

बेखबर नदी*

आकाश
गिर पड़ा है
नदी में
गोद में लिए उसको
बेखबर नदी
सूरज चाँद सितारों से
बेखबर है

संभावित रचनाकाल : 1968

कमल*

उनको
मेरा नमन्
कमल के खिले नयन का
जो जल थल के मिले योग से
मृदु मृणाल पर जनमे
महाकाल के सूक्ष्म तत्व से विकसे
अग्निमुखी ऊर्जा के तप से निखरे
पवन प्राण में

संभावित रचनाकाल : 1971

* शीर्षक संपादक द्वारा

गोमती*

मौत की मुट्टियों से
निकलकर बाहर
जमीन में लोटती गोमती
प्यार का पय लिए
तुम्हें खोजती है
मुख्यमंत्री की संवेदना
बटोरती है
और हम
और हम जैसे तमाम लोग
समय की पीठ पर
लट्ट मारते,
भागती-दौड़ती दुनिया में
चकरधिन्नी काटते हैं
काश
हम देखते तुम्हें
काल के सिर पर सवार
दिग्विजय करते
वर्ष-प्रतिवर्ष
जीवन को जवान करते

संभावित रचनाकाल : 1975

भूमि की प्रिया*

वह वज्र की बनी है
पर चाम से मढ़ी है
इंसान के हृदय की
वह रक्त की नदी है
वह जिन्दगी नहीं है
जो मौत से डरी है
आँसू भरे खड़ी है

* शीर्षक संपादक द्वारा

दुख दर्द से ठगी है
हर बार वह लड़ी है
जब आपदा पड़ी है
तलवार सी चली है
संघर्ष में पली है
जब सिंधु आ गया है
पथ डूबता गया है
पुल बाँधती गई है
वह लाँघती गई है
जब मेघ ने डराया
तमतोम में छिपाया
वह ज्योति सी जगी है
तम काटने लगी है
कौतुक नहीं किया है
वह भूमि की प्रिया है
रोके नहीं रुकेगी
नर्तन सृजन करेगी**

हल हाथ है उसी का*

हल हाथ है उसी का
जो खेत में चला है
श्रम बिन्दु है उसी का
जो बीज हो उगा है
वरदान है उसी का
जो धान्य हो फला है
उल्लास है उसी का
जो प्राण को मिला है

** यह कविता किसी पत्रिका के रैंपर पर लिखी हुई जिस पर तीन पाई का टिकट लगा हुआ है। (सं०)

* शीर्षक संपादक द्वारा

मेरी सत्ता*

मेरी सत्ता
तेरी सत्ता
सबकी सत्ता
मानव की पीड़ित सत्ता है।
सुख खोना है,
दुख बोना है,
नित रोना है
मन मन का
सूना कोना है।

रात ही है यह विरह की*

रात ही है यह विरह की आज ऐसी
प्रियतमा कोई न पाता
बन्द कलियों की सुकोमल पालकी ले
पवन को उपवन बुलाता
पर न सौरभ-संगिनी का एक क्षण भी
वह उसे दर्शन दिलाता
रात ही है यह विरह की आज ऐसी प्रियतमा कोई न पाता।
मार्ग निर्झर के तरलतर हैं अनेकों
मेरु हत्तल पर दिखाता
पेड़ सब बिछुड़े खड़े कर, पर उन्हें
बेहद विकल निश्चल बनाता
रात ही है यह विरह की आज ऐसी प्रियतमा कोई न पाता ॥
व्योम-गंगा में सहस्रों तारकों की-
नाव प्रेमी दल चलाता
डूब जातीं वे वहीं पर, डूब जाता दल वहीं पर छटपटाता
रात ही है यह विरह की आज ऐसी प्रियतमा कोई न पाता ॥

* शीर्षक संपादक द्वारा

जल उठूँ मैं*

जल उठूँ मैं जल उठूँ ऐसा कहाँ वरदान पाऊँ?
प्रेम है इतना हृदय में
नेह का नीरज रचाऊँ
देह की दीपक शिखा को
युग युगान्तर तक जलाऊँ
युग्म-संकोची कुचों के बीच-
बस सुख-स्पर्श पाऊँ
तुम मुझे चूमो बराबर, मैं
नहीं फिर भी अघाऊँ
सिर धुनूँ तब, पूर्ण मद-मूँदे
दृगों में पैठ जाऊँ
जल उठूँ मैं जल उठूँ ऐसा कहाँ वरदान पाऊँ।

उसकी देह*

बिना तार का
सितार है
उसकी देह,
न दिन में बजी
न रात में,
जब भी दिखी
दिन में कजरारी
रात में
सावनी औँधियारी दिखी
न सुबह हुई उसमें
न शाम

* शीर्षक संपादक द्वारा

सिताये पटाखे*

कुछेक
छूटे
पटाखे सिताए,
न शोर ने
कुशती मारी
न धुएँ ने
आँखें फोड़ीं

आदमी नहीं हो पाया आदमी*

अब तक अब तक, इस सदी के इस वर्ष तक
आदमी होते-होते भी
आदमी नहीं हो पाया आदमी,
चाहे आदमी ने आदमी होने का मुखड़ा भले ही लगाया हो
या कि उसमें आदमी का जिस्म पहन ही क्यों न लिया हो
और आदमी की नकल में
हूबहू आदमी ही क्यों न हो गया हो,
सिर के पैर तक-अगल से बगल से
भीतर से बाहर से
आदमी की औलाद क्यों न बन गया हो
और हरकत और हालत से
चाहे हिल्ले हवाले से
आदमी होने का भ्रम भी उसने फैलाया हो
सिर को जमीन तक सिजदे में चाहे जिन्दगी भर झुकाया हो
मन्दिर में पान-फूल-बेलपत्र चाहे दूध और पैसा चढ़ाया हो,
याचना में दोनों हाथ खोले हुए चाहे
भक्ति की भावना से गिड़गिड़ाया है
चाहे चन्द्रमा पर चढ़ा या कि आदमी होने के दम्भ में
उसने प्रकृति को बन्दिनी बनाया हो
चाहे भू-गर्भ में गया हो और पाताल फोड़कर

* शीर्षक संपादक द्वारा

पाताली सम्पदा चुरा लाया हो
यंत्र मानव को जन्म देकर
चाहे उसे सर्वोपरि बनाया हो।

मोम का ममी*

न
आप हैं
अपने
न और के

मोम का
ममी है
आपका आदमी
और
आप हैं
आदमी की नकल

साँझ*

दिन गया—
हाथ से निकल
रैन रीछ ले आई
बिम्बों की काया
सँवराई (झँवराई)

निर्माण का गीत*

आओ रचना रचाएँ,
चारु चातुरी दिखाएँ,
ज्ञान, कर्म की भुजाएँ
वर्तमान को झुलाएँ

* शीर्षक संपादक द्वारा

स्वर्ग भूमि को बनाएँ
सुख पाएँ दीन दुखिया ।

आओ सपना जगाएँ
शूल-धूल से उठाएँ,
मोरपंख से सजाएँ
प्रेम-बाँसुरी बजाएँ,
नाच जाए मनबसिया ।

आओ बगिया लगाएँ,
फूल-पँखुरी खिलाएँ,
पात-पात को बजाएँ
राग-रागिनी जिलाएँ
सूर्य-चन्द्र मुस्कराएँ
रंग-मंच बने दुनिया ।

रश्मियाँ रँगती रहेंगी*

रश्मियाँ रँगती रहेंगी
और थल रँगता रहेगा
भूमि की चित्रांगदा से
आदमी मिलता रहेगा
कोकिला गाती रहेगी
और जल बजता रहेगा
राग की वामांगिनी से
आदमी मिलता रहेगा
खेतियाँ हँसती रहेंगी
और फल पकता रहेगा
मोहिनी विश्वंभरा से
आदमी मिलता रहेगा
रूप से रचता रहेगा

* शीर्षक संपादक द्वारा

गीत से गढ़ता रहेगा
आदमी संसार को
मुदमोद से मढ़ता रहेगा

दिवस शरद के*

मुग्ध कमल की तरह पाँखुरी-पलकें खोले
कंधों पर अलियों की आकुल अलकें तोले
तरल ताल से दिवस शरद के पास बुलाते
मेरे मन में रस पीने की प्यास जगाते ।

पत्ता वह मैं हूँ*

पत्ता जो टूट गया पेड़ से,
गिरकर जो पृथ्वी पर पड़ा रहा
थोड़े दिन हरा रहा,
लेकिन फिर सूख गया,
पत्ता वह मैं हूँ ।

वसन्त*

फिर मैं आया
अब की बार अधिक बौराया
पहले से ज्यादा फूलों की ढेरी लाया
गाँव-गली में गिरि में वन में
रंग बिरंगा मेरा यौवन नहीं समाया

अंधकार*

अंधकार का भारी जंगल
मेरे जग पर मौन खड़ा है
छाया-छल की छतुरी ताने
सबको ढाँके

* शीर्षक संपादक द्वारा

सुबह और शाम*

मैंने उसको हँसते देखा;
उसके गालों पर गुलाब को खिलते देखा;
वह अकूल अनुराग-पुलक-सी-
दूर खड़ी भी पास खड़ी थी।
वह मेरी रंगीन सुबह थी!!

बस, फिर मेरी ट्रेन चली थी।
प्लेटफार्म पर सुबह सुनहरी छूट गई थी।
दिन की यात्रा-
धूल-धुएँ के बीच हुई थी।

एक बार फिर,
बरसों बीते,
मैंने उसको नदी किनारे गुमसुम देखा;
उसके गालों के गुलाब सब सूख गए थे;
दूर खड़ी भी पास खड़ी थी।
वह मेरी सुनसान शाम थी॥

जब छोटे से बड़ा हुआ*

जब
छोटे से बड़ा हुआ
घुटने मोड़कर चलने के बजाए
खड़े होकर
गाँव घर में चलने लगा
अपने पैरों पर उछलने लगा
तब
मैंने सूरज से दोस्ती की
धूप में उसके
अपनों और दूसरों को पहचानने लगा,

* शीर्षक संपादक द्वारा

पेड़ पौधों से घनिष्टता की
फूलों की सुगन्ध से महकते
और फलों के स्वाद से रसियाने लगा
और हवा की हिरासत में
अपने आप को
खुशकिस्मत समझने लगा
और गाँव घर को
खेलकूद का मैदान समझने लगा
जब
पट्टी पुजाकर गाँव के मदरसे में
पढ़ने लगा
ककहरा के माध्यम से
शब्दों को तितलियों की तरह पकड़ने लगा
सौ तक गिनती गिनकर
विद्वान होने की कल्पना करने लगा
और पहाड़े के पहाड़ पर
हाँफ हाँफ कर चढ़ने लगा
और मुद्दरिस को
जेलर की तरह
आँख बचाकर देखने लगा
पोथियों पर स्याही गिराकर
शब्दों को मिटाने लगा

अस्तित्व*

कुछ है
बिल्कुल कुछ है
जो मुझमें है
मेरे भीतर
मेरा है,
मगर मेरा नहीं है
बिल्कुल नहीं है

* शीर्षक संपादक द्वारा

वह कुछ
न मैं हूँ
न मेरा अस्तित्व है :
मगर है
मेरे अस्तित्व में
जो मेरा अस्तित्व
परिवेश में है
और क्षण-पर-क्षण
अनस्तित्व की ओर
संक्रमणशील है

मैं न था
होने से पहले
न मैं होऊँगा
न होने के बाद
वह था मेरे होने से पहले
और होगा, मेरे न होने पर भी

मेरा होना-न होना
मेरे लिए महत्वपूर्ण हो सकता है
मैं हुआ
कि वह मुझमें हुआ
कि मैं हूँ और वह मुझमें है

मैं न हुआ होता
न वह मेरे भीतर हुआ होता
इस पर भी वह हुआ होता
बिल्कुल हुआ होता
चाहे मैं हुआ होता
या न हुआ होता
बिल्कुल न हुआ होता

मेरे होने की प्रतीति

मुझको है
उसके होने की प्रतीत मुझको है
मेरे होने की प्रतीति से मिला
उसके होने की प्रतीति है
और यह प्रतीति भिन्नता
मेरे होने से है
जो मेरे न होने से परे न होगी
मगर वह होगा—
तब भी होगा
उसका होना
मेरे होने-न-होने पर निर्भर नहीं है
पर उसके लिए नहीं
जो मुझमें है
मगर मेरा नहीं है
बिल्कुल नहीं है
क्योंकि मेरे जन्म का कारण-अस्तित्व है
जो सबके होने का होने आदि का कारण है—
उस कुछ के होने का कारण नहीं है
जो स्वयं उस कुछ से है
मगर
बिल्कुल नहीं है
अस्तित्व उस कुछ से है
अलग, नितान्त अलग
विश्व के उद्भव और विकास के लिए
दिक् और काल के प्रसार के लिए
अस्तित्व से अनस्तित्व में संक्रमण करने के लिए
नव के जन्म के लिए
शून्य से अशून्य और अशून्य से शून्य की ओर
प्रयाण करने के लिए
प्रकृति और पुरुष के विहार के लिए

शब्द हो गए बागी*

होंठ खुलते हैं
जुबान चलती है
आग भीतरी लौ लिए निकलती है
शब्द हो गए बागी
निजाम डरता है

असीम सौन्दर्य की एक लहर*

असीम सौन्दर्य की एक लहर,
नदी से नहीं—
समुद्र से नहीं—
देखते-ही-देखते
उमड़ी तुम्हारे शरीर से,
छापकर छा गई
फैल गई मुझ पर।

बस छुए मुझे*

न छुए आकाश मुझे
न छुए वातास,
छुए तो बस छुए मुझे
रूप का प्रश्वास,
पौ फटे का हास।

* शीर्षक संपादक द्वारा

मेरा गाँव

यहाँ नीम के पेड़ खड़े इतिहास सुनाते।
कटु देहाती गत जीवन की बात बताते॥
यहाँ नीम की छाँह घाम से देह जुड़ाती।
दुःख से मूँदे आँख यहाँ जनता रह जाती॥
यहाँ नीम की लघु निंबकौरी ही इच्छा है।
जीवन के लघु लघु लाभों की वह भिच्छा है॥
यहाँ आम के वृक्ष भूमि से रस लेते हैं।
कम पाते, इसलिए सरस फल कम देते हैं॥
जनता की अभिमति-सी इनकी मति होती है।
क्षुद्र काठ में ही इनकी परिणति होती है॥
सभी लगाए गए गाँव के बाहर पनपे।
उनके ऊपर ताप-दाप दुख दारुण तमके॥
महुओं के मानी पौधों का भी कुनबा है।
संख्या में शायद सब पेड़ों से दुगना है॥
लेकिन महुए और मनुज में भेद नहीं है।
राम भरोसे तने हुए हैं, खेद नहीं है॥
इन महुओं के नीचे होता नाच मोर का।
इन महुओं के नीचे होता जुआ जोर का॥
यह है मेरा गाँव यहाँ का मैं वासी हूँ।
नीम, आम; महुए के विरवों का साथी हूँ॥
मेरा तन इसकी माटी से गढ़ा गया है।
मेरा तन इसके सुख-दुख से मढ़ा गया है॥
मेरे ऊपर इसकी माया की छाया है।
गुण अवगुण मैंने इसके ही तो पाया है॥
यह है मेरा गाँव भूमि इसकी तपती है।
शैल सुता-सी कठिन तपस्या वह करती है॥
आलय के खपरैल दहकते रज जलती है।
क्षार लपेटे तप्त मही इसकी रहती है॥
ग्रीष्म यहाँ आकर जल पीता समुद ताल का
काग यहाँ प्यासा रह जाता कठिन काल का

बाँह सूख जाती है तत्क्षण कमल-नाल की सृष्टि-विनाशक हो जाती है समय चाल की हृष्ट-पुष्ट हरियाली पेड़ों की झर जाती दूब कुएँ के पास पड़ी व्याकुल मुरझाती गहरा पानी और कुएँ का गहरे जाता साठ और सत्तर हाथों की रज्जु नपाता एक बेर भी हो जाता है कठिन नहाना खींच हाथ से पानी सिर ऊपर घर लाना पीना होता है पानी अमरित-सा पीना थोड़ा-थोड़ा कंठ सींच कर होता जीना चुचुआता है सुबह, शाम, दोपहर पसीना मैले तन में रात गुजरती नित्य मलीना यहाँ नाम की कभी-कभी मिलती तरकारी लौकी, कुम्हड़ा, कडू करैला की तरकारी जिन्हें नाज देकर खरीदते ग्राम निवासी वह भी तिथि त्योहार कभी बनती है भाजी चैत यहाँ संतप्त विकल बैसाख बनाता जेठ यहाँ उदंड लूक-लपटें ले आता आसमान से आग सूर्य सिर पर बरसाता आधी रात गए बीते तक ताप तपाता पिछलहरे की वात सरकती नींद बुलाती लोगों को उस समय चैन से तनिक सुलाती यह है मेरा गाँव यहाँ की ग्रीष्म गुमानी लूक लपट से दुख देता करता मनमानी लेकिन इस पर भी यह मेरा गाँव कमासिन साल-सरल संतप्त काटता गरमी के दिन सदियों से प्रेरित करता है जियो-जिओ जन! वर्षागम पर शीघ्र करेगा ग्रीष्म पलायन हरियायेगा जीवन का चहुँ ओर तपोवन हरसाएगा आर-पार चहुँ ओर कृषीजन यही आस-विश्वास लिए मन धीरज धारे दिन प्रतिदिन के तप-आतप के कष्ट बिसारे खेतपात घरबार गाँव से नेह लगाए

पुरजन परिजन प्रियजन को आत्मीय बनाए
गाँव वासियों का समूह संलग्न काम में
कभी काटता सन या ढोता पाँस घाम में
कोई कृषक बनाते खपरे घर छाने को
वन जाते हैं कोई ईंधन घर लाने को
कोई बैल चराने 'पाठे' चल देते हैं
कोई बैठे बात बूँकते रस लेते हैं
ऐसे भी हैं लोग यहाँ जो चोरी करते
गरमी के अवकाश दिनों में पर-धन हरते
डाके में कुछ व्यक्ति यहाँ के शामिल होते
बीज गुनाहों के बहुतेरे वे हैं बोते
कोई झूठ गवाही देते, पेट पालते
खेतपात से फुरसत लेकर जेब काटते
ऐसे भी हैं लोग पुलिस के पिट्टु जाहिर
घूस दिलाने में दो तरफा जो हैं माहिर
टुटपुँजिए बनिए बेचारे घोड़ी लादे
बाजारों से माल यहाँ विक्रय को लाते
अपनी छोटी दुकानों में बैठ बेचते
रोकड़-खाते में उधार का जोर देखते
यहाँ कार्यक्रम ही समाज के अधोमुखी हैं
इसीलिए कम लोग यहाँ के अभी सुखी हैं
ज्ञान यहाँ पर नहीं जमा पाया है आसन
बुद्धि यहाँ पर अभी नहीं कर पाई शासन
राई-रत्ती भर विद्या मिलती है कुछ को
दसखत करने की शिक्षा मिलती है कुछ को
वह भी शिक्षा निष्प्रयोग रह खो जाती है
सरस शारदा मूक गाँव की हो जाती है
ग्राम देवता भी गँवार-सा कष्ट झेलते
आसपास की भूमि-भवानी पस्त देखते
जहाँ खड़े हैं वहीं खड़े हैं एक भाव से
निस्सहाय दीनों के साथी एक चाव से
पथराई आँखों से सबको वह निहारते
रात समय सपने में आ वह भ्रम निवारते

ग्राम देवियाँ भी गँवारियों-सी विमूढ़ हैं
मनोभाव अव्यक्त और अतिशय निगूढ़ हैं
एक पान पाकर चढ़ाव में वे प्रसन्न हैं
यद्यपि अपने जन्म-काल से वे निरन्न हैं
एक बतासे में सुहाग का वर देती है
मान-मनौती के मिस विपदा हर लेती हैं
अनुकम्पा पाकर कन्याएँ माँ बनती हैं
नवयुवती होने से पहले सुत जनती हैं
तुलसी के वंशज, हुलसी की कुल-कन्याएँ
यह दोनों ही सीख चुके हैं काम-कलाएँ
आकर्षण आने से पहले यौवन ढलता
रूप अविकसित विवस पराया होकर पलता
डाके पड़ते हैं कामिनियों के अंगों पर
कामुक जन निर्लज्ज थिरकते भ्रू-भंगों पर
कुल-भूषण कुल-दूषण बनते मान गँवाते
दाम लगाकर दारा लाते गेह बसाते
सामाजिक आचरण चरण के नीचे मरता
सिर के ऊपर समाचार व्यभिचार विचरता
यह है मेरा गाँव यहाँ की कुंठित मति है
अनुशासन से हीन यहाँ की जीवन-गति है
फिर भी कुंठित मति के मारे मनुजन हारे
पतझर में भी वे रहते हैं जीवन धारे

‘बम्बार्ड’ से साभार।

[यह कविता बाँदा के स्थानीय हिन्दी-पत्र ‘बम्बार्ड’ में 2
अप्रैल, 1981 को उस समय प्रकाशित हुई थी, जब केदारजी को उ० प्र०
हिन्दी संस्थान ने उनकी साहित्य-सेवा के लिए पन्द्रह हजार का पुरस्कार
प्रदान किया था। (सं०)]

अनूदित कविताएँ

ये कविताएँ 'सम्मान : केदारनाथ अग्रवाल'
समारोह (1986) के अवसर पर
ऋषिकल्प आदरणीय डॉ० रामविलास शर्मा ने केदारजी के
आवास पर सम्पादक को लिखावाई थीं। इन्हें वह अपने
साथ दिल्ली से खास इसी उद्देश्य से ले आए थे। (सं०)

क्या तुम नभ पर चलते चलते,
संगी साथी बिना विचरते,
अवनी अपलक, नित्य निरखते,
घटते बढ़ते और बदलते,
प्यार न पाकर पियराए हो,
शून्य नयन से पथराए हो?*

12-8-56

लड़ा नहीं है, अपनी मैंने जोट न पाई;
पुण्य प्रकृति की ललित कला ही मुझको भाई;
जीवन-अग्नि जलाई-मैंने देह तपाई,
मंद हुई वह अग्नि, बुझी, दो मुझे विदाई।**

12-8-56

कर्ण प्रिय कोमल स्वरों के पतन पर भी
गीत का संगीत स्मृति में गूँजता है।
नयन प्रिय मनहर सुमन के निधन पर भी
रूप शय्या पर पँखुरियाँ राजती हैं।
प्रेमिका के त्याग पर-प्रस्थान पर भी,
प्रेम को सुधियाँ प्रिया की पालती हैं।***

8-2-57

* शैली की कविता 'टू दि मून' का अनुवाद।

** डब्ल्यू० एस० लेण्टर की कविता (मूल शीर्षक नहीं प्राप्त हुआ) का अनुवाद।

*** शैली की कविता 'म्यूजिक ह्वेन सॉफ्ट वाइसेस ड्राई' का अनुवाद।

कविता का गम्भीर पंक्ति के शान्त विभव के सुस्पंदन में
हम निहारते हैं लहराते देवदास का पेड़ मेड़ पर
और कथानक जब रूपायित हो जाता है सुन्दरता से
हम अनुभव करते हैं रक्षित हुए किसी 'हायोर्न' कुंज का
लेकिन जब वह अपने चिंतित पंख पसारे आगे चलता
उसके मनमोहक आलेखन में आत्मा अपनी खोती है।

‘हाइपीरियन’ का पहला स्टैंजा*

गिरि गह्वर के गहन छाँह छाए विषाद में
पूरा डूबा, दूर प्रात की स्वस्थ स्वास में
दूर प्रखर मध्याह्न-ताप-संध्या-तारा से
शिला खंड-सा जड़ बैठा था श्वेत-केश शनि
निज निवास के अनालाप-सा वाणी वंचित;
वन-पर-वन सिर के समीप थे घन-पर-घन से।
जीवन भी ऐसा अक्षम था जैसा अक्षम
ग्रीष्म दिवस में होके हटाए नहीं बीज लघु
पंखिल शाद्वल के शरीर को धीमें छूकर
उपरत पात पड़ा था भू पर जहाँ गिरा था।
निर्झर भी निःस्वन बहता था वहीं निकट से
अधिकाधिक जड़ जठर रूप धर तम-सा फैला,
निज देवत्व-पतन पीड़न के कटु कारण से
जल की परी घिरी नरकुल के बीच अकेली
ओठों पर तर्जनी हिमानी धरे खड़ी थी।

8-2-57

दिन अँधेरा-मेघ झरते,
खल पवन के, आक्रमण से
वन दुखी बाहें उठाये
रोर हाहाकार करता
चपल चपला जलद पट को

* शीर्षक संपादक द्वारा

छिन्न करके झाँकती है
हास बंकिम हृदयभेदी
शून्य से भू पर बरसता।*

5-11-61



* रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता 'मेघदूत' के आठवें स्टैंजा का अनुवाद।

